AN ABRIDGED EDITION OF

TULSI DAS'S

RÂMA-CHARITA-MANASA

COMPILED AND EDITED BY

SYAM SUNDAR DAS, B. A.,

Head Master, Kali Charan High School, Lucknow

ALLAHABAD:

RAM DAYAL AGARWALA,

PUBLISHER AND BOOKSELLER.

1917.

ice Re. 1.] [Second Edition.

प्रस्तावना

भारतवर्ष की भाषाएँ पाँच मुख्य भागों में विभक्त की जा सकती हैं—आर्य्य, द्रविड़, मुंडा, मानखमेर और तिब्बती-चीनी। यदि हम प्राचीनता के ध्यान से भाषाओं का परस्पर क्रम स्थिर करें तो हमको सबसे पहला स्थान मुंडा* भाषाओं को देना पड़ेगा, परंतु आर्य्य भाषाओं का भारतवर्ष की सभ्यता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है और उनके बोलनेवालों की संख्या सबसे अधिक † है तथा उनका साहित्य भी सर्वोत्कृष्ट है, इसलिये हमें सबसे प्रथम स्थान उन्हीं को देना पड़ता है।

आर्य्य लोगों का आदि स्थान कहाँ था, इसके विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि वे काकेशस और हिंदूकुश पहाड़ों पर रहते थे। दूसरे कहते हैं कि उनका आदि स्थान उत्तर-पश्चिम युरोप में था। तीसरे कहते हैं कि नहीं वे अरमीनिया में, आक्सस तथा जरक्सीस नदियों के आस पास रहते थे। इधर जो नए अनुसंधान किए गए हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि वे एशिया और युरोप के उन मध्यवर्त्ती मैदानों में, जो रूस के दक्षिण में हैं, रहते थे। यहाँ वे भेड़-बकरियाँ चराते और खेती करते थे। यहाँ से वे पूर्व और पश्चिम की ओर फैले। जो पूर्व की ओर गए उनसे ही हमारा संबंध है। वे पहले पहल आक्सस और जर-

---

* मुंडा भाषाओं का मुख्य स्थान छोटा नागपुर है। सन् १९११ की मनुष्य-गणना के अनुसार इन भाषाओं के बोलनेवाले लगभग ३१, ८०, ००० हैं, जो बंगाल, उड़ीसा, मद्रास, मध्य प्रांत और बिहार के उत्तर में पाए जाते हैं।

† सन् १९११ की मनुष्य-गणना के अनुसार इनकी संख्या २१,९७,२५,००० है।

क्सीस के किनारे आकर बसे। अतएव हम यह कह सकते हैं कि उनका प्रथम निवासस्थान खीवा की शाद्वल में था जहाँ से उन नदियों के किनारे किनारे उनके उद्गम की ओर बढ़ते बढ़ते वे खोखंद और बदख़शाँ की ऊँची भूमि में जा बसे। यहाँ तक उनमें फूट न पड़ी। वे मिले जुले रहे। पर यहाँ से उनके दो भाग हो गए। एक तो फारस की ओर गए और दूसरे काबुल नदी की उपत्यका में होते हुए भारतवर्ष में आए। जो फ़ारस की ओर गए उनकी भाषा में क्रम क्रम से परिवर्त्तन होता गया और वह अंत में ईरानी भाषा के नाम से प्रख्यात हुई। जो भारतवर्ष में आए उनकी भाषा ने आर्य्यभाषा का नाम ग्रहण किया। भाषा उन निश्चित वाक्-चिह्नों का नाम है जिनके द्वारा मनुष्य अपने मनोगत भावों को एक दूसरे पर प्रगट कर सकता है। जल वायु, प्रकृति तथा अन्य भाषाभाषी लोगों के मेल-मिलाप से भाषा का रूप क्रम क्रम से बदलता रहता है और समय पाकर वह उस स्थिरता को ग्रहण करता है जिसके द्वारा उसका एक निश्चित रूप माना जाता है। पर फिर भी यदि हम एक ही बीज से उत्पन्न एक वृक्ष की दो शाखाओं को क्रम क्रम से उनकी जड़ की ओर मिलाते चले जाँय तो अंत में हमें उनकी समान उत्पत्ति का निश्चय हो जायगा। यही अवस्था भाषाओं की भी है।

अस्तु, विद्वानों का मत है कि जो आर्य्य लोग पश्चिम की ओर से काबुल नदी की उपत्यका के मार्ग से भारतवर्ष में आए वे एक ही बेर यहाँ नहीं आ बसे, वरन् वे कई टोलियों में धीरे धीरे आए। ज्यों ज्यों वे आगे बढ़ते गए त्यों त्यों उनकी रहन-सहन तथा भाषा में क्रम क्रम से परिवर्त्तन होता गया और यही कारण है कि हम आज भारतवर्ष के आर्य्य लोगों को भिन्न भिन्न देशभाषाओं को बोलते हुए पाते हैं।

विद्वानों का मत है कि जब आर्य्य लोग कई शताब्दियों में पंजाब में पहुँचे उस समय उनकी भाषा का रूप मीड़िक अर्थात् आसुरी से बदल कर वैदिक संस्कृत हो गया था जिसमें ऋग्वेद के प्राचीनतम भाग लिखे गए हैं। पंजाब के आदिम निवासियों के संघट्टन से इस पुरानी संस्कृत में उनकी भाषा का मेल बढ़ने लगा। यह उन प्राचीन आर्य्यों को सह्य न हुआ और उन्होंने व्याकरण के नियमों से परिवेष्टित कर अपनी भाषा की रक्षा करनी चाही। धीरे धीरे ये नियम इतने जटिल और संकुचित हो गए कि इनसे संस्कृत भाषा के भविष्यत विकास में बाधा उपस्थित होने लगी और अंत में उसका विकास रुक गया और वह जहाँ की तहाँ स्थिर रह गई। प्रकृति का यह नियम है कि वृद्धि तभी तक होती है जब तक उसके विकास की सामग्री उपस्थित रहे। जहाँ उसमें बाधा पड़ी कि विकास बंद हुआ। जब तक वह स्वच्छंद रही, उसे हाथ पैर फैलाने का अवसर मिलता रहा वह फलती फूलती रही। जहाँ इस स्वच्छंदता में बाधा उपस्थित की गई और उसके स्वतंत्रजीवन की सीमाएँ निर्धारित की गईं, उसका फलना फूलना बंद हो गया। परंतु इस प्रकार व्याकरण के नियमों से परिवेष्टित होकर उसने अपना पूर्व पवित्र रूप स्थिर रक्खा और वह आज तक अपने संस्कृत (संस्कारयुक्त) रूप में वर्तमान है। यद्यपि प्राचीन आर्य्य अपने उद्योग में एक प्रकार से सफल हुए पर वे प्राचीन प्राकृत के स्वाभाविक प्रवाह को न रोक सके। प्राकृत तो संस्कृत में बिना संस्कार के न घुस सकी, पर संस्कृत प्राकृत में घुस गई। संस्कृत की उन्नति रुक गई, पर प्राकृत दिनों दिन उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने लगी। काल पाकर वह जन साधारण के बोल चाल की भाषा हो गई। ज्यों ज्यों यह प्राकृत आगे बढ़ती गई और देश के भिन्न भिन्न भागों में इसका साम्राज्य स्थापित होता गया त्यों त्यों

उन उन भागों की प्राकृतिक अवस्था के कारण उसमें परिवर्त्तन होता गया और वह समय पाकर मागधी, सौरसेनी, महाराष्ट्री आदि कई भागों में विभक्त हो गई। व्रजभाषा इसी सौरसेनी प्राकृत का रूपांतर है जिससे हमारी आधुनिक हिंदी की उत्पत्ति हुई। हिंदी पद्य दो प्रकार की बोलियों में विशेष कर लिखा गया है-व्रजभाषा और अवधी, बुंदेलखंडी दोनों का मिश्रण सी जान पड़ती है। व्रजभाषा तो सौरसेनी से जन्मी और अवधी की उत्पत्ति सौरसेनी और मागधी के संयोग से हुई।

हिंदी का उत्पत्ति काल ८०० ईसवी के लगभग माना जाता है। प्राकृत का अंतिम व्याकरण (हेमचंद) सन् ११५० ई० के लगभग रचा गया। शिवसिंहसरोज के अनुसार हिंदी का आदि कवि पुष्य था। पर न तो उसके किसी ग्रंथ का पता लगता है और न उसकी भाषा का नमूना ही कहीं देखने में आता है। दूसरा ग्रंथ खुमान रासो है, पर वह भी अब अपने प्राचीन रूप में कहीं नहीं मिलता। तीसरा ग्रंथ जिसका पता चला है वह कविचंद कृत पृथ्वीराजरसो है। यद्यपि इस समय जो प्रतियाँ पथ्वीराजरासो की मिलती हैं वे क्षेपकों से भरी हुई हैं तथापि इसमें संदेह नहीं कि यह ग्रंथ बारहवीं शताब्दी में पहले पहल रचा गया था। चंद ने अपने ग्रंथ में जो पूर्व कवियों की वंदना की है उसमें अंतिम नाम जयदेव (जिन्ह कीन्ह गित्त गोविंद गायं) है जो १२वीं शताब्दी में वर्तमान थे। अतएव हिंदी भाषा का जो रूप पृथ्वीराजरासो में दिया है वह १२ वीं शताब्दी का है। इससे यह अनुमान होता है कि हिंदी की उत्पत्ति का समय !८ वीं शताब्दि के लगभग मानना चाहिए।

स्थूल रूप से हिंदी सहित्य के इतिहास को ५ भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) उत्पत्तिकाल—८०० ई० से १२०० ई० तक।

(२) प्रारंभिक काल—१२०० ई० से १५०० ई० तक।
(३) प्रौढ़ काल— १५०० ई० से १७०० ई० तक।
(४) उत्तर काल— १७०० ई० से १८५० ई० तक।
(५) वर्त्तमान काल—१८५० ई० से १९ ई० ... तक।

उत्पत्ति काल के कवियों में चंद, जल्ह, जगनिक आदि हैं। प्रारंभिक काल के कवियों में अमीर खुसरो, गोरखनाथ, कबीरदास नानक और वल्लभाचार्य्य हैं। प्रौढ़ काल में अनेक अच्छे अच्छे कवि हुए जिनके कारण हिंदी का प्राचीन साहित्य अनेक रत्नों से परि-पूर्ण हुआ और इसे देश भाषाओं के साहित्य में सम्मान का पद प्राप्त हुआ। इस काल के कवियों में मुख्य ये हैं—सूरदास, तुलसीदास, गंग, तानसेन, रहीम, रसखान, केशवदास, नाभादास, सुंदरदास, सेनापति, विहारी, भूषण, मतिराम, देव, लाल आदि। उत्तर काल के कवियों में ठाकुर, दूलह, वेनी, पद्माकर, सरदार और द्विज आदि हैं। इसी काल में आधुनिक गद्य परिमार्जित रुप में प्रचलित हुआ जिसके लेखकों में लल्लू लाल, सदल मिश्र और राजा लक्ष्मण सिंह आदि प्रधान हैं। आधुनिक काल के लेखकों और कवियों में भारतेंदु हरिश्चंद्र सबसे प्रधान हैं। यदि हम इस काल को हरिश्चंद्र काल कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। वास्तव में इन्हीं के प्रदर्शित पथ पर चल कर हिंदी इतनी उन्नति कर रही है और उसमें नित्य नए ग्रंथरत्नों का आविर्भाव हो रहा है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि हिंदी साहित्य के इतिहास का १५०० से १७०० तक का समय बड़ा ही विचित्र हुआ है। इन शताब्दियों में ही हिंदी ने उन कविरत्नों को उत्पन्न किया था जिनके कारण उसका नाम चिरस्थायी हुआ और वह देशभाषाओं में ऊँचे सिंहासन पर विराजने की अधिकारिणी हुई। यदि हम समस्त भूमंडल के इतिहास पर ध्यान देते हैं तो यह विदित होता है कि

इसी समय में अनेक देशों ने अद्भुत उन्नति की है और ऐसे ऐसे लोगों को उत्पन्न किया है जो अपने अपने देशों के इतिहास पर अपनी अपनी छाप छोड़ गए हैं। यह समय भूमंडल में एक विचित्र, चिरस्थायी और उपकारी परिवर्तन करने में समर्थ हुआ है। हिंदी साहित्य के इतिहास में और विशेष कर उसके इस भाग के कवियों में तुलसीदास का स्थान सबसे ऊँचा है। सच पूछो जाय तो संसार के प्रधान प्रधान कवियों में तुलसीदास को एक गौरव का स्थान मिलना चाहिए था पर अब तक उनकी कृति का ऐसा प्रचार नहीं हुआ है कि लोग उनके गुणों का पूरा पूरा परिचय पाकर उनका यथोचित आदर करते। भारतवर्ष में इससे बढ़कर तुलसीदास का और क्या आदर हो सकता है कि उनके रामचरितमानस का एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक प्रचार है। क्या राजा महाराजा सेठ साहूकार, दंडी, मुनि, साधु, और क्या दीन हीन साधारण प्रजा सब में उनके मानस का यथोचित आदर है। बड़े बड़े विद्वान् से निरक्षर भट्टाचार्य तक उनके मानस से अपने मानस की तृप्ति करते और अपनी अपनी विद्या बुद्धि के अनुसार उसका रसास्वादन कर अपने को परम कृतकृत्य मानते तथा तुलसीदास की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। उनके रामचरितमानस ने भारतवर्ष और विशेष कर उसके उत्तर भाग का बड़ा उपकार भी किया है। रीति, नीति, आचरण, व्यवहार, सब बातों में मानों तुलसीदास ही हिंदू प्रजा मात्र के पथ-प्रदर्शक हैं। प्रत्येक विषय में उनकी चौपाइयाँ उधृत की जाती हैं और लोगों के लिये धर्म्मशास्त्र का काम देती हैं। न जाने इस ग्रंथ ने कितनों को डूबते से बचाया, कितनों की कुमार्ग पर जाने से रक्षा की, कितनों के निराशमय जीवन में आशा का संचार किया, कितनों को घोर पाप से बचाकर पुण्य मार्ग पर लगाया और कितनों को धर्म्मपथ पर

डगमगाते चलने में सहारा देकर सम्हाला। कविता की दृष्टि से देखा जाय तो भी तुलसीदास जी का रामचरितमानस उपमाओं और रूपकों का मानो भांडार है। चरित्र-दर्शन में तो उन्होंने बड़ी ही सफलता पाई है। मिश्रबंधुविनोद के रचयितागण लिखते हैं—

"संसार के किसी भी कवि के विषय में यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता कि उसने तुलसीदास जी से श्रेष्ठतर कविता की है। अँगरेज़ी कविता के चूड़ामणि महाकवि शेक्सपियर (१५२१ से १५७३) की उपमा प्रायः इनसे दी जाती है और कतिपय अँगरेज लेखकों ने ममतावश उसे इनसे भी कुछ बड़ा माना है। इसमें संदेह नहीं कि उसके हैमलेट, मैकबेथ, विंटर्स टेल, ओथेलो, किंग लियर, जूलियस सीज़र, वेनिस का सौदागर इत्यादि नाटक नामी और प्रशंसनीय हैं, परंतु कुल बातों पर ध्यान देने से गोस्वामी जी में उससे अधिक चमत्कार पाया जाता है। विंटर्स टेल में प्रेम और उसकी जाँच का अच्छा चित्र खींचा गया है; पर सीता जी के प्रेम-वर्णन के सामने वह फीका पड़ जाता है। किंग लियर में कार्नीलिया का पितृप्रेम एवं गानरिल और रीगन की चालाकी तथा लियर पर उनका प्रभाव अच्छा वर्णित हुआ है, पर कैकेई की कुटिलता पर दशरथ की दशा एवं श्रीराम के पितृप्रेम वाले वर्णनों के सामने बरबस कहना पड़ेगा कि किंग लियर किसी लड़के की रचना है। जूलियस सीज़र का परम पुरुषार्थ ब्रूटस की मूर्खता एवं एन्टनी की वक्तृता है, पर इनकी प्रभा अयोध्याकांड के अनेकानेक व्याख्यानों के सामने एकदम मंद पड़ जाती है। मर्चेंट आफ़ वेनिस में संदूक़ खोलने में प्रणयी लोगों के विचार एवं न्यायालय का दृश्य अच्छा है। इनके सामने स्वयंवर में राम द्वारा धनुष टूटने के समय सीता वा उनकी माता के विचार एवं अन्य अनेक वर्णन कहीं बढ़े चढ़े हैं। हैमलेट और मैकबेथ परम प्रशंसनीय ग्रंथ हैं;

पर रामायण में अयोध्याकांड के वर्णन उनसे कम कदापि नहीं हो सकते। शेक्सपियर ने कुल मिलाकर आकार में गोस्वामी जी से प्रायः ड्योढ़ी कविता की है, जिसमें प्रायः आधा गद्य है। इन ग्रंथों में मानुषीय प्रकृति और नैसर्गिक पदार्थों के ऐसे ऐसे उत्तम और मनोहर चित्र खींचे गए हैं कि उन्हें पढ़कर अवाक् रह जाना और उक्त कविकुलमुकुट के सम्मुख सिर नीचा करना पड़ता है। उसने प्रायः सभी प्रकार के मनुष्यों की प्रकृतियों, विविध दशाओं, शृंगार एवं हास्यरसों और अन्य कई तरह के चमत्कारी विषयों के चित्ता-कर्षक वर्णन किए हैं, तथा कथानक संगठन में अच्छी सफलता पाई है। शांति, वीर और भयानक रसों को छोड़ शेष अन्य रसों के भी बड़े ही उत्तम उदाहरण उसमें पाए जाते हैं। सब से बढ़ कर बात यह है कि मानुषीय प्रकृति का वर्णन शेक्सपियर ने अद्वितीय किया है। इस विषय में गोस्वामी जी तक को उसने नीचा दिखा दिया है। पर गोस्वामीजी ने मानुषीय प्रकृति का अत्यंत सच्चा और मनोहर वर्णन करके जो ईश्वरी प्रकृति,शांतिरस, काव्यांगों और भक्ति-भाव की अटूट तरंगें प्रवाहित की हैं जिनमें निमग्न होकर वे इस स्वार्थी संसार के बहुत परे उठ गए हैं, उनका स्वाद साधारण संसारी जातियों के विद्वानों तक को पूर्ण रीति से अनुभूत नहीं हो सकता। गोस्वामी जी के वर्णनों को पढ़कर मनुष्य नीची और उच्च सभी प्रकार की प्रकृतियों को भली भाँति जान कर उत्तम मार्ग की ओर ही प्रवृत्त होगा। भक्ति रस का जो गंभीर और हृदयद्रावक भाव इनकी रचनाओं में हर स्थान पर वर्तमान रहता है उसके सामने शेक्सपियर कुछ भी उपस्थित नहीं कर सकता। वंदना, विनय, अयोध्या-कांड के सभी वर्णन, अनेक विनतियाँ, लंका-दहन (कविता-वली का), बाल-लीला और ज्ञान-भक्ति आदिक जैसे अच्छे गोस्वामी जी ने कहे हैं, उनके जोड़ शेक्सपियर आदि में नहीं मिलते। भाषा

और कविता-शैली में तुलसीदासजी ने पृथक पृथक चार प्रकार के कवियों की भाँति रचनायें की हैं, जिनके उदाहरण-स्वरूप राम-चरित-मानस, कवितावली, कृष्ण-गीतावली और विनय-पत्रिका कही जा सकती हैं। दोहावली और सतसई आदि में इनकी एक पाँचवीं ही छटा देख पड़ती है। इनके शेष ग्रंथ इन्हीं पाँच विभागों में आवेंगे।"

इन्हीं गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म विक्रमीय संवत् १५८९ में राजापुर ज़िला बाँदा में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलसी था। किसी किसी के मत से ये पाराशर गोत्री पतिऔजा के दुवे सरयूपारी ब्राह्मण और किसी के मत से कान्यकुब्ज थे। अत्यंत शैशव काल में ही माता-पिता का देहांत हो जाने से ये साधुओं की मंडली के साथ रहने और घूमने लगे थे। पर कुछ लोग कहते हैं कि ये मूल नक्षत्र में पैदा हुए थे और ज्योतिष के अनुसार मूल नक्षत्र में जन्मा बालक पितृहंता होता है, उसका मुख पिता को न देखना चाहिए, इस कारण इनके पिता ने इनको त्याग दिया था और साधु लोग इनको सूकर क्षेत्र उठा ले गए थे। किंतु कोई भी माता पिता इस प्रकार अपने बच्चे को त्याग नहीं देता इससे उनका मर जाना ही समीचीन जान पड़ता है। जो हो, किंतु ये सूकरक्षेत्र (सोरों) में अपनेगुरुदेव श्री नरहरिदास जी की शरण में बहुत काल तक रहे।

नरहरिदास श्री रामानुज संप्रदाय के स्मार्त्त वैष्णव और श्री रामानंद जी के बारह शिष्यों में से थे। उन्होंने बचपन ही से इन्हें रामचरित सुनाना आरंभ कर दिया था और तभी से ये राम-कथा के प्रेमी बन गए थे, किंतु अचेत बालावस्था और संस्कृत में विशेष प्रवेश न होने के कारण ये उसे ठीक समझ नहीं पाते थे। परंतु गुरु ने दयापूर्वक इनको बार बार उक्त कथा को सुनाया जिससे

श्री रामचंद्र जी का संपूर्ण चरित्र इनके मानस-पटल पर अंकित हो गया और इनकी यह दृढ़ अभिलाषा हुई कि मैं इस चरित्र को अपने मत के अनुसार भाषा में काव्यबद्ध करूँ।

बहुतों का मत है कि यहाँ पर इनको एक सुंदर सुयोग्य वैष्णव जानकर पंडित दीनबंधु पाठक ने अपनी साध्वी कन्या 'रत्नावली' का इनसे पाणिग्रहण करा दिया था जिससे 'तारक' नाम का एक पुत्र भी इनके हुआ था जो बचपन ही में मर गया। गोसाईं जी अपनी स्त्री से बहुत स्नेह करते थे। एक दिन उनकी स्त्री बिना कहे नैहर चली गई। ये उसका वियोग न सह सके और उसके घर जाकर उससे मिले। इनको देखकर स्त्री बहुत झुँझलाई और उसने इनको अनेक दुर्वचन कहे। उसने कहा—"जैसी प्रीति आपने मेरे इस हाँड़-चाम के शरीर से लगाई है, अगर ऐसी प्रीति आपकी श्रीराम जी में होती तो आप भवबंधन से छूट जाते।" यह बात गोसाईं जी को लग गई और वे उसी दिन से विरक्त हो काशी जी चले गए।

बहुत लोग इस विवाह-कथा पर विश्वास नहीं करते और कहते हैं वे बाल-काल ही से विरक्त थे और साधुओं के संग तीर्था-टन किया करते थे और उनका निवास अधिकतर अयोध्या या काशी में होता था। यह बात गोसाईं जी के लेखों से भी स्पष्ट होती है।

गोसाईं जी ने छोटे बड़े १२ मुख्य ग्रंथों की रचना की है जिनके नाम ये हैं—

१ राम-चरित-मानस वा रामायण।
२ दोहावली।
३ कवित्त रामायण।
४ गीतावली।

५ कृष्ण गीतावली ।
६ रामाज्ञा ।
७ रामलला नहछू ।
८ वैराग्य संदीपनी ।
९ बरवै रामायण ।
१० पार्वती-मंगल ।
११ जानकी-मंगल ।
१२ विनय-पत्रिका ।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित और १० ग्रंथ उनके नाम से प्रसिद्ध हैं। यथा—१ रामसतसई, २ संकटमोचन, ३ हनुमद्बाहुक, ४ रामसलाका, ५ छंदावली, ६ छप्पय रामायण, ७ कड़खा रामायण, ८ रोला रामायण, ९ झूलना रामायण, १० कुंडलिया रामायण। इनमें से कई ग्रंथ अब नहीं मिलते और कई दूसरों के अंश मात्र हैं। इन ग्रंथों में रामसतसई एक बड़ा ग्रंथ है। इसमें ७०० दोहे हैं जिसमें कोई डेढ़ सौ दोहे दोहावली के हैं।

गोसाईं जी के १२ ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१ राम-चरित-मानस—इस चमत्कारपूर्ण ग्रंथ को गोसाईं जी ने संवत् १६३१ चैत्र शुक्ला ९ (रामनवमी) मंगलवार को अपनी ४२ वर्ष की अवस्था में आरंभ किया था। गोसाईं जी का सब से पहला ग्रंथ यही जान पड़ता है। इस ग्रंथ को उन्होंने अयोध्या में आरंभ किया था और अरण्य कांड तक बनाकर वे काशी जी चले गए और वहीं उन्होंने इसकी पूर्ति की।

इसका नाम गोसाईं जी ने 'राम-चरित-मानस' रक्खा था और इसमें सात सोपान किए थे, पर लोक में इसका नाम रामायण और सोपानों का कांड प्रसिद्ध हुआ।

गोसाईं जी ने सांसारिक जीवों के कल्याण के लिये सप्त प्रबंध

रूपी सात सीढ़ियोंवाले मानस (सरोवर) की रचना की है। इस तड़ाग में श्रीरामचंद्र जी का विमल चरित्ररूपी अगाध जल है, जिसमें श्री सीताराम के सुयश की लहरें उठ रही हैं, जल में प्रेम और भक्ति की मिठास और शीतलता है। ऊपर से अनेक चौपाई रूपी सघन पुरइन फैली हुई है जिसमें छंद, सोरठा, दोहा रंग बिरंगे कमल खिले हुए हैं। कमलों पर सुकृत रूपी भौंरे गुंजार कर रहे हैं और ज्ञान वैराग्य एवं विचार रूपी हंस तैर रहे हैं। धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी जलचर-जंतु भी इस मानस में हैं। जो लोग आदरपूर्वक इसको पढ़ते हैं और सुनते हैं वे ही इस मानस के अधिकारी हैं, जो विषयी और दुष्ट, बगले और कौवे हैं उनकी इसमें पैठ नहीं हो पाती।

२ दोहावली—इस ग्रंथ में ५७३ दोहों का संग्रह है। दोहों में नाम-माहात्म्य, वेदांत, राजनीति, कलियुग-दुर्दशा, धर्म्मोपदेश आदि का वर्णन है।

३ कवित्त रामायण—इसमें ३६४ कवित्त हैं। आदि के कवित्तों में राम-चरित का वर्णन है, अंत के कवित्तों में देश,काल और कुछ उनका निज का वर्णन आगया है। हनुमद्बाहुक इसी के अंतर्गत है जिसमें उन्होंने अपनी बाहु-पीड़ा-निवारण के लिये हनुमान् जी की स्तुति की है। यह ग्रंथ सं० १६६९—१६७१ में उन्होंने बनाया।

४ गीतावली—यह ग्रंथ राग रागिनियों में है और इसमें कृष्ण-लीला के ढंग पर रामलीला का वर्णन है। इसमें ३३० पद हैं।

५ कृष्णगीतावली—इसमें कृष्णचरित्र का वर्णन है। शायद इसे गोसाईं जी ने व्रज में बनाया है। इसमें ६१ पद हैं।

६ रामाज्ञा—इसमें शकुन विचारने के व्याज से रामचरित्र का वर्णन है और इसमें ४९-४९ दोहों के सात अध्याय हैं। इस ग्रंथ को संवत १६५५ जेठ सुदी १० रविवार को उन्होंने लिखा।

७ रामलला नहछू—इसमें २० सोहर छंद हैं जिनमें श्रीरामजी के विवाह में, जनकपुर में नखों में महावर देते समय कौशल्या आदि का मृदुहास्य किया है।

८ वैराग्य संदीपनी—इसमें ५२ छंदों में संतस्वभाव, संत-महिमा एवं शांति का वर्णन है। जान पड़ता है, इसे विरक्त होते समय गोसाईं जी ने बनाया है।

९ बरवै रामायण—इसमें ७४ छंद हैं, जिनमें रामचरित्र का स्फुट वर्णन है। कहते हैं इस ग्रंथ को गोसाईं जी ने अपने मित्र नवाब खानखाना के मनोरंजनार्थ बनाया था। गोसाईं जी ने नर-चरित्र न लिखने की प्रतिज्ञा की थी, इस कारण उन्होंने नवाब का भी मनोरंजन रामचरित्र ही से किया।

१० पार्वती-मंगल—इसमें महादेव-पार्वती का विवाह-वर्णन है। इसमें सोहर के १४८ तुक और १६ छंद है। इसको गोसाईं जी ने संवत् १६४३ फागुन सुदी २ गुरुवार को बनाया।

११ जानकी-मंगल—इसमें श्री सीताराम-विवाह का वर्णन है। इसमें १९२ सोहर और २४ छंद है। यह पार्वती मंगल का सम सामयिक जान पड़ता है।

१२ विनय पत्रिका—इसमें राग रागिनियों में गोसाईंजी ने विनय के पद लिखे हैं। इसमें देवी, देवता, दशावतार, तीर्थ, देवालय आदि की स्तुति और वर्णन है। इसे गोसाईं जी ने काशी में ही लिखा। इस ग्रंथ में उनकी कवित्व शक्ति का पूर्ण परिचय मिलता है।

गोसाईं जी के ग्रंथों में यद्यपि उत्तर भारत की ग्रामीण भाषा की ही प्रधानता है, पर भावों के व्यक्त करने में उन्होंने किसी भाषा विशेष का बंधन नहीं रक्खा। उनका शब्दविन्यास इतना सरल और बोधगम्य है कि उनके काव्य बाल वृद्ध वनिता सब को प्यारे हैं और भाव इतने गंभीर हैं कि बड़े बड़े पंडितों को मोहित कर

लेते हैं। समय समय पर अपने विरोधियों की उन्होंने अपने काव्य में अच्छी ख़बर ली है। उनके काव्य में प्रायः सभी रसों का समावेश है पर भक्ति की सर्वत्र प्रधानता है। इससे उनका युद्ध-वर्णन कुछ फीका पड़ गया है। उनके रामचरित-मानस में धर्म्म-नीति, समाज-नीति, राज-नीति एवं सदाचार का सम्यक निदर्शन है। और हिंदुओं में इसकी बड़ी प्रतिष्ठा है। इसी लिये इस ग्रंथ को पाश्चात्य विद्वान् हिंदुओंकी "बाइबिल" कहते हैं।

गोसाईं जी स्वभाव के बड़े ही दीन थे। अभिमान उनको छू नहीं गया था। वे स्मार्त्त वैष्णव थे। स्मार्त्त वैष्णव किसी के विरोधी नहीं होते। वे शाकभोजी होते हैं और सदाचार और भक्ति ही उनकी संपत्ति है। ईश्वर में उनका स्वामी-सेवक भाव है। भगव-न्नामस्मरण ही उनका तप है, और सायुज्य मुक्तिकी प्राप्ति ही उनका परम पुरुषार्थ है। हनुमान जी गोसाईं जी के इष्ट देव थे। संकट के समय वे उन्हीं का स्मरण करते थे और वे उनकी सहायता करते थे। कहते हैं उन्हीं की बदौलत उन्हें श्री रामचंद्र जी के इस कलि-काल में प्रत्यक्ष दर्शन हुए थे। गोसाईं जी ने अपने इष्टदेव श्री हनुमान जी के अनेक मंदिर स्थापित किए और वर्त्तमान रामलीला भी उन्हीं की प्रचलित की हुई है।

अपने जीवन-काल में काशी, मथुरा, अयोध्या, वृंदावन, आगरा, दिल्ली, लखनऊ, मड़ियांव, चनहट, रसूलाबाद, मलिहाबाद, संडीला, नैमिषारण्य, मिसरिख, विठूर, प्रयाग, चित्रकूट, जनकपुर, सारन आदि अनेक स्थानों में गोसाईं जी ने भ्रमण किया और रामचरित एवं राम-भक्ति का वे सर्वत्र प्रचार करते रहे तथा इस भ्रमण में उन्होंने अनेक अलौकिक चमत्कार दिखाए। अंत में श्रावण शुक्ला ७ सं० १६८० में ९१ वर्ष की अवस्था में अपनी पूर्ण आयु का उपभोग कर भारतीय साहित्यगगन में तुलसीदास रूपी चंद्रमा

अपनी प्रभा को छोड़ कर अस्त होगया। जब तक पृथ्वी पर हिंदू धर्म्म रहेगा, जब तक हिंदी कविता का आदर रहेगा और जब तक उत्तम चरित्र का गौरव रहेगा तब तक गोसाईं जी का प्रकाश प्रकाशित रहेगा।

तुलसीदास जी के रामचरित-मानस के अनेक संस्करण अब तक प्रकाशित हो चुके हैं और नित्य नए नए और एक से एक बढ़कर प्रकाशित होते जाते हैं। पाठ्य पुस्तकों में भी इनके अंश बराबर उद्धृत होते रहते हैं। पर प्रारंभ से लेकर अंत तक स्कूल की पढ़ाई समाप्त होजाने पर भी बालकों का रामचरितमानस के सब कांडों का पढ़ना नहीं होने पाता। उन्हें विशेष कर बालकांड और अयोध्याकांड के अंश पढ़ने को मिलते हैं। यद्यपि यह बात ठीक है कि ये ही दोनों कांड रामचरितमानस के सर्वोत्तम अंश हैं तथापि एक ग्रंथ के संपूर्ण अध्ययन और खंड खंड पढ़ने में बहुत अंतर है। खंड खंड पढ़ने से विशेष विशेष कथाओं का ही ज्ञान प्राप्त होता है। पर संपूर्ण ग्रंथ के पढ़ने से उसके सब अंगों का ज्ञान प्राप्त होता है और साथ ही चरित्रनायक और उपनायकों के पूरे वृत्तांत के जानने से उनके गुण दोषों पर विवेचना करने तथा उनके पूरे चरित्र पर एक साथ और पर्याप्त दृष्टि डालने का अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त किसी ग्रंथ के आदि से अंत तक पढ़ने से कवि की शक्ति का पूरा परिचय मिलता है। साथही ग्रंथ में अंकित चरित्रों का जो प्रभाव पूरे ग्रंथ के पढ़ने से पड़ सकता है वह खंड खंड के अध्ययन से कभी नहीं प्राप्त हो सकता। इन्हीं बातों को विचार कर और बालकों को रामचरितमानस का पूरा पाठ करने का सुभीता देने के अभिप्राय से मैंने इस संस्करण के तैयार करने का साहस किया है। इसमें संपूर्ण ग्रंथ की मुख्य मुख्य कथाएँ आगई हैं और कहीं भी ऐसा नहीं होने पाया है कि कथा टूटती

हुई जान पड़े, साथही उत्तमोत्तम अंश के समावेश का ध्यान रक्खा गया है। कुछ लोग मुझ पर यह दोषारोपण कर सकते हैं कि मैंने इस ग्रंथ को काट छाँट कर नष्ट भ्रष्ट कर डाला। उनसे मेरा इतना ही निवेदन है कि इस छोटे संक्षिप्त संस्करण को पढ़कर विशेष संभावना है कि पाठकों की रुचि समस्त ग्रंथ के पढ़ने की ओर हो और यदि यह संभव न भी हुआ तो यही क्या कम लाभ होगा कि हमारे बालक रामचरितमानस का पूर्ण अध्ययन इस रूप में कर पावेंगे और तुलसीदास जी के महत्व और गौरव को समझ उनसे अपनी भलाई करने में समर्थ होंगे।

जुलाई १६१५ } श्यामसुन्दरदास

रामचरितमानस ।

बाल कांड ।

सो०—जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करि-बर-बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन ॥ १ ॥
मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल-कलि-मल-दहन ॥ २ ॥
नील-सरोरुह-स्याम, तरुन-अरुन-बारिज-नयन ।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीर-सागर-सयन ॥ ३ ॥
कुंद-इंदु-सम देह, उमारमन करुनाअयन ।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन ॥ ४ ॥
बंदउँ गुरु-पद-कंज, कृपासिंधु नररूप हरि ।
महा-मोह-तम-पुंज, जासु बचन रबि-कर निकर ॥ ५ ॥

बंदउँ गुरु-पद - पदुम - परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।
अमिय-मूरि-मय चूरन चारू । समन सकल-भव-रुज-परिवारू ।
सुकृत संभुतन बिमल बिभूती । मंजुल मंगल - मोदप्रसूती ।
जन-मन-मंजु-मुकुर - मल-हरनी । किए तिलक गुन-गन-बस-करनी ।
श्रीगुरु-पद-नख-मनि गन-जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ।
दलन मोहतम सोसुप्रकासू । बड़े भाग उर आवइ जासू ।
उघरहिं बिमल बिलोचन हिय के । मिटहिँ दोष दुख भवरजनी के ।
सूझहि रामचरित मनिमानिक । गुप्त प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ।

दो०—जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ॥ ६ ॥

गुरु-पद - रज-मृदु-मंजुल-अंजन । नयनअमिय दृग-दोष-विभंजन ।
तेहि करि विमल विवेक विलोचन । बरनउँ रामचरित भवमोचन ।
बंदउँ प्रथम मही-सुर-चरना । मोह-जनित संशय सब हरना ।
सुजन-समाज सकल-गुन-खानी । करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी ।
साधुचरित सुभ सरिस कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहि जग जसु पावा ।
मुद-मंगल-मय संत - समाजू । जो जग जंगम तीरथराजू ।
रामभगति जहँ सुरसरि-धारा । सरसइ ब्रह्मबिचार प्रचारा ।
बिधि-निषेध-मय कलि-मल-हरनी । करमकथा रबिनंदिनि बरनी ।
हरि-हर-कथा बिराजति बेनी । सुनत सकल-मुद-मंगल-देनी ।
बट बिस्वासु अचल निज धर्मा । तीरथराज समाज सुकर्मा ।
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा । सेवत सादर समन कलेसा ।
अकथ अलौकिक तीरथराऊ । देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ।

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिँ अति अनुराग ।
लहहिँ चारि फल अछत तनु, साधुसमाजु प्रयाग ॥ ३ ॥

मज्जनफल पेखिय ततकाला । काक होहिं पिक बकउ मराला ।
सुनि आचरज करइ जनि कोई । सत-संगति महिमा नहिँ गोई ।
बालमीकि नारद घटजोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी ।
जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ।
मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई ।
सो जानब सत-संग-प्रभाऊ । लोकहु बेद न आन उपाऊ ।
बिनु सतसंग बिवेक न होई । रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ।
सतसंगति मुद-मंगल-मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।
सठ सुधरहिँ सतसंगति पाई । पारस परसि कुधातु सोहाई ।
बिधिबस सुजन कुसंगति परहीं । फनि-मनि-सम निज गुन अनुसरहीं ।
बिधि-हरि-हर-कबि-कोविद-बानी । कहत साधुमहिमा सकुचानी ।
सो मो सन कहि जात न कैसे । साकबनिक मनि-गन-गुन जैसे ।

दो०—बंदउँ संत समान-चित, हित अनहित नहि कोउ।
अंजुलिगत शुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोउ॥ ८॥
संत सरल चित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
बालविनय सुनि करि कृपा, राम-चरन-रति देहु॥ ९॥

बहुरि बंदि खलगन सतिभाये। जे बिनु काज दाहिने बाये।
पर-हित-हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरे हरष बिषाद बसेरे।
हरि-हर-जस राकेस राहु से। परअकाज भट सहसबाहु से।
जो परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिनके मन माखी।
तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ-अवगुन-धन-धनी धनेसा।
उदय केतु सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके।
परअकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषीदल गरहीं।
बंदउ खल जस शेष सरोषा। सहसबदन बरनइ परदोषा।
पुनि प्रनवउँ पृथुराजसमाना। परअघ सुनइ सहसदस काना।
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही।
बचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहसनयन परदोष निहारा।

दो०—उदासीन-अरि-मीत-हित, सुनत जरहिं खलरीति।
जान पानिजुग जोरि जन, बिनती करउँ सप्रीति॥ १०॥

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा।
बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुं कि कागा।
बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दारुन दुख देहीं।
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं।
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती।
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलि-मलसरि ब्याधू।
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।

दो०—भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥ ११॥

खल-अघ-अगुन साधु-गुन-गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा।
तेहि ते कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए।
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधिप्रपंच गुन-अवगुन-साना।
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती।
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिय सजीवन माहुर मीचू।
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा।
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुन-दोष-बिभागा।

दो०—जड़-चेतन-गुन-दोष-मय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत-हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार॥ १२॥

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता।
कालसुभाउ करम बरियाई। भलेउ प्रकृतिबस चुकइ भलाई।
सो सुधारि हरि जन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं।
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।
लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेषप्रताप पूजिअहि तेऊ।
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।
किएहु कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू।
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु बेद बिदित सब काहू।
गगन चढइ रज पवनप्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच-जल-संगा।
साधु असाधु सदन सुक सारी। सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारी।
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिय पुरान मंजु मसि सोई।
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग - जीवन - दाता।

दो०—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥ १३॥

सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ॥१४॥
जड़ चेतन जग जीव जन, सकल राममय जानि।
बंदऊँ सब के पदकमल, सदा जोरि जुगपानि ॥ १५ ॥
देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदऊँ किंनर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्ब ॥ १६ ॥

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल-थल-नभ-बासी।
सीय-राम-मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुगपानी।
जानि कृपा कर किंकर मोहू। सब मिल करहु छाड़ि छल छोहू।
निज बुधिबल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं।
करन चहउँ रघुपति-गुन-गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा।
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ।
मति अति नीच ऊँच रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी।
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई।
जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदितमन पितु अरु माता।
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर - दूषन - भूषन - धारी।
निज कबित्त केहि लाग न नीका। सरस होय अथवा अति फीका।
जे परभनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं।
जग बहु नर सुरसरि-सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई।
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई।

दो०—भाग छोट अभिलाषु बड़, करउँ एक बिस्वास।
पैहहिँ सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिँ उपहास ॥१७॥

खलपरिहास होइ हित मोरा। काक कहहिँ कलकंठ कठोरा।
हंसहिं बक, दादुर चातकही। हँसहिँ मलिन खल बिमल बतकही।
कबित रसिक न राम-पद नेहू। तिन कहँ सुखद हासरस एहू।
भाषाभनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी।
प्रभु-पद-प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहिं कथा सुनि लागिहि फीकी।

हरि-हर-पद-रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुवर की।
राम-भगति-भूषित जियँ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी।
कवि न होउँ नहिं बचनप्रबीनू। सकल कला सब विद्याहीनू।
आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना।
भावभेद रसभेद अपारा। कवित-दोष-गुन बिबिध प्रकारा।
कवित बिवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागज कोरे।
दो०—भनिति मोरि सब-गुन-रहित, बिस्वबिदित गुन एक।
सो विचार सुनिहहिं सुमति, जिन्ह के बिमल बिबेक॥१८॥
एहि महँ रघुपति-नाम उदारा। अति पावन पुरान-स्रुति-सारा।
मंगलभवन अमंगलहारी। उमासहित जेहि जपत पुरारी।
भनिति बिचित्र सु-कवि-कृत जोऊ। रामनाम बिनु सोह न सोऊ।
बिधुबदनी सब भाँति सवाँरी। सोह न बसन बिना बर नारी।
सब-गुन-रहित कु-कवि-कृत बानी। राम-नाम-जस-अंकित जानी।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही।
जदपि कवित रस एकउ नाहीं। रामप्रताप प्रगट एहि माहीं।
सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसंग बड़प्पन पावा।
धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई।
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगलकरनी।
छंद—मंगलकरनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु-सुजस-संगति भनिति भलि होइहि सुजन-मन-भावनी।
भवअंग भूति मसान की सुमिरत सोहावनि पावनी॥
दो०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम, भनिति राम-जस-संग।
दारुविचारु कि करइ कोउ, बंदिय मलय प्रसंग॥१९॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिराग्राम्य सिय-राम-जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥२०॥
मनि-मानिक-मुकुता-छबि जैसी। अहि-गिरि-गज-सिर सोह न तैसी।

नृपकिरीट तरुनीतनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई।
तैसेहि सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं।
भगति हेतु बिधिभवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई।
राम-चरित-सर बिनु अन्हवाये। सो स्रम जाइ न कोटि उपाये।
कबि कोबिद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरिजस कलि-मल-हारी।
कीन्हे प्राकृत-जन-गुन-गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।
हृदय सिंधु मति सीपि समाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना।
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू।

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहियहिं, रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग॥ २१॥

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला।
चलत कुपंथ बेदमग छाँड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँड़े।
बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के।
तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिग धरमध्वज धँधरकधोरी।
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ।
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महँ जानिहहिं सयाने।
समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी।
एतेहु पर करिहहिं जे संका। मोहि ते अधिक ते जड़ मति रंका।
कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप रामगुन गावउँ।
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा।
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं।
समुझत अमित रामप्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई।

दो०—सारद सेष महेस बिधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरंतर गान॥ २२॥

सब जानत प्रभुप्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई।
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजनप्रभाउ भाँति बहु भाखा।
एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा।

व्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना।
सो केवल भगतन्ह हित लागी। परमकृपाल प्रनत अनुरागी।
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू।
गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल अबल साहिब रघुराजू।
बुध बरनहिं हरिजस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी।
तेहि बल मैं रघुपति-गुन गाथा। कहिहउँ नाइ रामपद माथा।
मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहिं भाई।

दो०—अति अपार जे सरित बर, जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु स्रम पारहि जाहिं॥२३॥

एहि प्रकार बल मनहिं देखाई। करिहउँ रघुपतिकथा सोहाई।
ब्यास आदि कबिपुंगव नाना। जिन्ह सादर हरिसुजस बखाना।
चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहु सकल मनोरथ मेरे।
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति-गुन-ग्रामा।
जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने।
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवउँ सबहिं कपट सब त्यागे।
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधुसमाज भनितिसनमानू।
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो स्रम बादि बालकबि करहीं।
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुर-सरि-सम सब कहँ हित होई।
राम-सु-कीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहिं अँदेसा।
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सोहावनि टाट पटोरे।

दो०—सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान॥ २४॥
सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहिँ मतिबल अति थोरि।
करहु कृपा हरिजस कहउँ, पुनि पुनि करउँ निहोरि॥ २५॥
कबिकोबिद रघुबरचरित, मानस - मंजु - मराल।
बालबिनय सुनि सुरुचि लखि, मो पर होहु कृपाल॥ २६॥

सो०—बंदउँ मुनि-पद-कंजु, रामायन जेहिं निरमयेउ।
सखर सकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित ॥ २७ ॥
बंदउँ चारिउ बेद, भव-बारिधि-बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहु खेद, बरनत रघुबर बिसद जस ॥ २८ ॥
बंदउँ बिधि-पद-रेनु, भवसागर जेहि कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल बिष बारुनी ॥ २९ ॥

दो०—बिबुध बिप्र-बुध-ग्रह-चरन, बंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोरि ॥ ३० ॥

पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता।
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका।
गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिनदानी।
सेवक स्वामि सखा सिय-पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के।
कलि बिलोकि जगहित हरगिरिजा। साबर-मंत्र-जाल जिन्ह सिरिजा।
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेसप्रतापू।
सो महेस मोहि पर अनुकूला। करहि कथा मुद-मंगल-मूला।
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चितचाऊ।
भनिति मोरि सिवकृपा बिभाती। ससिसमाज मिलि मनहुँ सुराती।
जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता।
होइहहिं राम-चरन-अनुरागी। कलि-मल-रहित सु-मंगल-भागी।

दो०—सपनेहुँ साचेहु मोहि पर, जौं हरगौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ ॥ ३१ ॥

जागबलिक जो कथा सोहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई।
कहिहउँ सोइ संवाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी।
संभु कीन्ह यह चरित सोहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा।
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। रामभगत अधिकारी चीन्हा।
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।
ते स्रोता बकता समसीला। समदरसी जानहिं हरिलीला।

जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना। कर-तल-गत आमलक-समाना।
अउरउ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं विधि नाना।
दो०—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥ ३२॥
स्रोता वकता ज्ञाननिधि, कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझइ यह जीव जड़, कलि-मल-ग्रसित विमूढ़॥३३॥
तदपि कही गुरु वारहिं बारा। समुझि परी कछु मतिअनुसारा।
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मेरे मन प्रबोध जेहि होई।
जस कछु बुधि-बिवेक-बल मेरे। तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे।
निज-संदेह-मोह-भ्रम-हरनी। करउँ कथा भव-सरिता-तरनी।
संवत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।
जेहि दिन रामजनम स्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं।
असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा।
जनम-महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना।
दो०—मज्जहिं सज्जन वृंद बहु, पावन सरजू नीर।
जपहिं रामधरि ध्यान उर, सुंदर स्याम सरीर॥ ३४॥
दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह वेद पुराना।
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा बिमलमति।
राम-धाम-दा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित जगपावनि।
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तन नहिं संसारा।
सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगलखानी।
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा।
राम-चरित-मानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइय बिस्रामा।
मन करि बिषय अनलवन, जरई। होइ सुखी जौं एहि सर परई।
राम-चरित-मानस मुनिभावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन।
त्रिविध दोष दुखदारिद-दावन। कलि कुचालि कुलि-कलुष-नसावन।

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा।
तातें राम-चरित-मानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर।
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई।
दो०—अब रघुपति पद पंकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगुल मुनिवर्य कर, मिलन सुभग संवाद॥ ३५॥
भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहिं रामपद अति अनुरागा।
तापस सम-दम-दया-निधाना। परमारथपथ परम सुजाना।
माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहि आव सब कोई।
देव दनुज किन्नर नरस्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनी।
पूजहिं माधव-पद-जलजाता। परसि अषय बट हरषहिं गाता।
भरद्वाजआश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिवर-मन-भावन।
तहाँ होइ मुनि-रिषय-समाजा। जाहिं जे मज्जहिं तीरथराजा।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परसपर हरि-गुन-गाहा।
दो०—ब्रह्मनिरूपन धर्म विधि, बरनहिं तत्व विभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै, संजुत – ज्ञान – विराग॥ ३६॥
एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं।
प्रति संबत अति होई अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृन्दा।
एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आस्रमन्ह सिधाए।
जागवलिक मुनि परम विवेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी।
सादर चरनसरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे।
करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी।
नाथ एक संसउ बड़ मोरे। करगत वेदतत्व सब तोरे।
कहत सो मोहि लाग भय लाजा। जौ न कहउँ बड़ होइ अकाजा।
दो०—संत कहहिं असि नीति प्रभु, स्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल विवेक उर, गुरु सन किये दुराव॥ ३७॥
अस विचार प्रगटउं निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू।
रामनाम कर अमित प्रभावा। संत – पुरान – उपनिषद-गावा।

संतत जपत संभु अविनासी। सिव भगवान ज्ञान-गुन-रासी।
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परम पद लहहीं।
सोपि राममहिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया।
रामु कवन प्रभु पूछउं तोहीं। कहिए बुझाइ कृपानिधि मोहीं।
एक राम अवधेसकुमारा। तिन्ह कर चरित विदित संसारा।
नारिविरह दुख लहेउ अपारा। भयउ रोप रन रावन मारा।
दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्वज्ञ तुम्ह, कहहु विवेक विचारि॥ ३८॥
जैसे मिटइ मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ विस्तारी।
जागवलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहिं विदित रघुपतिप्रभुताई।
रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी।
चाहहु सुनइ रामगुन गूढा। कीन्हहु प्रस्न मनहुँ अति मूढा।
तात सुनहु सादर मन लाइ। कहउँ राम कै कथा सुहाई।
महा मोह महिषेस विसाला। रामकथा कालिका कराला।
रामकथा ससिकिरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना।
अवधपुरी रघु-कुल-मनि-राऊ। वेदविदित तेहि दसरथ नाऊ।
धरम-धुरं-धर गुननिधि ज्ञानी। हृदय भगति मति सारँगपानी।
दो०—कौसल्यादि नारि पिय, सब आचरन पुनीत।
पतिअनुकूल प्रेम दृढ, हरि-पद-कमल विनीत॥ ३९॥
एक बार भूपति मन माहीं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं।
गुरुगृह गयेउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि विनय विसाला।
निज दुख सुख सब गुरुहि सुनायउ। कहि वसिष्ठ बहुविधि समुझायउ।
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रि-भुवन-विदित भगत-भय-हारी।
सृङ्गी रिपिहि वसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जज्ञ करावा।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे।
जो वसिष्ठ कछु हृदय विचारा। सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा।
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथाजोग जेहि भाग बनाई।

दो०—तब अदृस्य भये पावक, सकल सभहि समुझाइ ।
परमानंदमगन नृप, हरष न हृदय समाइ ॥ ४० ॥

तबहि राय प्रिय नारि बोलाईं । कौसल्यादि तहाँ चलि आईं ।
अरध भाग कौसल्यहि दीन्हा । उभय भाग आधे कर कीन्हा ।
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ । रहेउ सो उभय भाग पुनि भयऊ ।
कौसल्या कैकई हाथ धरि । दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ।
एहि विधि गर्भसहित सब नारी । भईं हृदय हरषित सुख भारी ।
जा दिन तें हरि गर्भहि आये । सकल लोक सुख संपति छाये ।
मंदिर महँ सब राजहिं रानी । सोभा सील तेज की खानी ।
सुखजुत कछुक काल चलि गयऊ । जेहि प्रभु प्रकट सो अवसर भयऊ ।

दो०—जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भये अनुकूल ।
चर अरु अचर हरषजुत, रामजनम सुखमूल ॥ ४१ ॥

नवमी तिथि मधुमास पुनीता । सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता ।
मध्य दिवस अति सीत न घामा । पावन काल लोकबिस्रामा ।
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ । हरषित सुर संतन्ह मन चाऊ ।
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा । स्रवहिं सकल सरितामृतवारा ।
सो अवसर बिरंचि जब जाना । चले सकल सुर साजि बिमाना ।
गगन विमल संकुल सुरजूथा । गावहिं गुन गंधर्बबरूथा ।
बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी । गहगहि गगन दुंदभी बाजी ।
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा । बहु विधि लावहि निज निज सेवा ।

दो०—सुरसमूह विनती करि, पहुंचे निज-निज-धाम ।
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल-लोक-बिस्राम ॥ ४२ ॥

छं—भये प्रगट कृपाला परमदयाला कौसल्या-हित-कारी ।
हरषित महतारी मुनि-मन-हारी अदभुत रूप विचारी ॥
लोचनअभिरामं तनुघनस्यामं जिन आयुध भुज चारी ।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी ॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करउं अनंता ।

माया-गुन-ज्ञानातीत अमाना वेद पुरान भनंता॥
करुना-सुख-सागर सब-गुन-आगर जेहि गावहिं स्रुतिसंता।
सो मम हित लागी जनअनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥
ब्रह्मांडनिकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीरमति थिर न रहै॥
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुतप्रेम लहै॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजिय सिसुलीला अति-प्रिय-सीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

दो०—विप्र-धेनु-सुर-संत हित, लीन्ह मनुजअवतार।
निज-इच्छा-निर्मित तनु, माया-गुन-गो-पार॥ ४३॥

सुनि सिसुरुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी।
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँदमगन सकल पुरबासी।
दसरथ पुत्रजनम सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना।
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा।
जा कर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई।
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा।
गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आये द्विजन्ह सहित नृपद्वारा।
अनुपम बालक देखिन्हि जाई। रूपरासि गुन कहि न सिराई।

दो०—तब नंदीमुख स्राद्ध करि, जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह॥ ४४॥

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा।
सुमनबृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानंदमगन सब लोई।
बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं। सहज सिँगार किये उठि धाईं।
कनककलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूपदुआरा।

करि आरति नेवछावरि करहीं। वार वार सिसुचरनन्हि परहीं।
मागध सूत वंदि गुनगायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक।
सरवसदान दीन्ह सब काहू। जेहि पावा राखा नहिं ताहू।
मृग--मद--चंदन--कुंकुम--कीचा। मची सकल वीथिन्ह विच वीचा।

दो०—गृह गृह बाज बधाव सुभ, प्रगटे सुखमाकंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ, नगर नारि-नर-वृंद।॥ ४५॥

कैकय सुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भइँ ओऊ।
वोह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा।
अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती।
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि वनी संध्या अनुमानी।
अगरधूप बहु जनु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी।
मंदिर-मनि-समूह जनु तारा। नृप-गृह-कलस सो इंदु उदारा।
भवन-वेद-धुनि अति मृदु बानी। जनु खग-मुखर-समय जनु सानी।
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना।

दो०—मासदिवस कर दिवस भा, मरम न जानइ कोइ।
रथसमेत रवि थाकेउ, निसा कवन विधि होइ॥ ४६॥

यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना।
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा।
अउरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी।
काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ।
परमानंद प्रेम-सुख-फूले। वीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले।
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई।
तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा।
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नाना विधि चीरा।

दो०—मन संतोष सबन्हि के, जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल तनय चिरजीवहु, तुलसिदास के ईस॥ ४७॥

कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिय दिन अरु राती।

नामकरन कर अवसर जानी। भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी।
करि पूजा भूपति अस भाखा। धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा।
इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा।
जो आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी।
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिस्रामा।
बिस्वभरन पोषन कर जोई। ता कर नाम भरत अस होई।
जा के सुमिरन तें रिपुनासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा।

दो०—लच्छन धाम रामप्रिय, सकल-जगत-आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार॥ ४८॥

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी। बेदतत्त्व नृप तव सुत चारी।
मुनिधन जनसरबस सिवप्राना। बाल-केलि-रस तेहिं सुख माना।
बारेहि तें निज हित पति जानी। लछिमन राम-चरन-रति मानी।
भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभुसेवक जसि प्रीति बड़ाई।
स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननी तृन तोरी।
चारिउ सील - रूप - गुन - धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा।
हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारहिं कहि प्रिय ललना।

दो०—ब्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगतबिनोद।
सो अज प्रेम-भगति-बस, कौसल्या के गोद॥ ४९॥

काम-कोटि-छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा।
अरुन-चरन-पंकज-नखजोती। कमलदलन्हि बैठे जनु मोती।
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहइ। नूपुर धुनि सुनि मुनिमन मोहइ।
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गँभीर जान जिन्ह देखा।
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हिय हरिनख अति सोभा रूरी।
उर मनिहारपदिक की सोभा। बिप्रचरन देखत मन लोभा।
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन-अमित-मदन-छबि छाई।
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनइ पारे।

सुंदर स्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला।
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सवाँरे।
पीत झगुलिया तनु पहिराई। जानु-पानि-बिचरनि मोहि भाई।
रूप सकहिं नहिं कहि स्रुति सेखा। सो जानहिं सपनेहुँ जिन्ह देखा।

दो०—सुखसंदोह मोहपर, ज्ञान - गिरा-गोतीत।
दंपति परम प्रेमबस, कर सिसुचरित पुनीत॥ ५०॥

एहि बिधि राम जगत-पितु-माता। कोसल-पुर-बासिन्ह सुखदाता।
जिन्ह रघुनाथचरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रगट भवानी।
रघुपतिबिमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भवबंधन छोरी।
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे।
भृकुटिबिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिय कहु काही।
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई।
एहि बिधि सिसु बिनोद प्रभु कीन्हा। सकल-नगर-बासिन्हसुख दीन्हा।
लेइ उछंग, कबहुँक हलरावइ। कबहुँ पालने घालि झुलावइ।

दो०—प्रेममगन कौसल्या, निसि दिन जात न जान।
सुत - सनेह - बस माता, बालचरित कर गान॥ ५१॥

एक बार जननी अन्हवाये। करिसिँगार पलना पौढ़ाये।
निज-कुल-इष्ट - देव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह असनाना।
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा।
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई।
गइ जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता।
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कंप मन धीर न होई॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी।

दो०—देखरावा मातहि निज, अदभुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मंड॥ ५२॥

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन। बहु गिर सरित सिंधु महि कानन।

काल करम गुन ज्ञान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ।
देखी माया सब विधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी।
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही।
तन पुलकित मुख वचन न आवा। नयन मूंदि चरनन्हि सिरु नावा।
बिसमयवति देखि महतारी। भये बहुरि सिसुरूप खरारी।
अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगतपिता मैं सुत करि जाना।
हरि जननी बहु विधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई।
दो०—बार बार कौसल्या, विनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापइ, प्रभु मोहि माया तोरि॥ ५३॥
बालचरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति आनँद दासन्ह कहँ दीन्हा।
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भये परिजन-सुख-दाई।
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई।
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा।
मन-क्रम-वचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई।
भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा।
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई।
निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरइ जननी हठि धावा।
धूसर धूरि भरे तनु आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये।
दो०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधिओदन लपटाइ॥ ५४॥
बालचरित अति सरल सुहाये। सारद सेष संभु स्रुति गाये।
जिन्हकर मन इन्ह सन नहिं राता। ते जन बंचित किये बिधाता।
भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु-पितु-माता।
गुरुगृह गये पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब पाई।
जाकी सहज स्वास स्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।
बिद्या-बिनय-निपुन गुनसीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला।
करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा।

जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई । थकित होहिं सब लोग लुगाई ।

दो०—कोसल-पुर-बासी नर, नारि बृद्ध अरु बाल ।
प्रानहुँ तें प्रिय लागत, सब कहँ राम कृपाल ॥ ५५ ॥

बंधुसखा सँग लेहिं बोलाई । बन मृगया नित खेलहिं जाई ।
पावन मृग मारहिं जिय जानी । दिन प्रति नृपहिं देखावहिं आनी ।
जे मृग रामबान के मारे । ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ।
अनुज सखा सँग भोजन करहीं । मातु पिता अग्या अनुसरहीं ।
जेहि बिधि सुखी होहिं पुरलोगा । करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा ।
बेद पुरान सुनहिं मन लाई । आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ।
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ।
आयसु माँगि करहिं पुरकाजा । देखि चरित हरषइ मन राजा ।

दो०—ब्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप ।
भगत हेतु नाना बिधि, करत चरित्र अनूप ॥५६॥

यह सब चरित कहा मैं गाई । आगिलि कथा सुनहु मन लाई ।
बिश्वामित्र महामुनि ग्यानी । बसहिं बिपिन सुभ आस्रम जानी ।
जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं । अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ।
देखत जग्य निसाचर धावहिं । करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ।
गाधि-तनय-मन चिंता ब्यापी । हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी ।
तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा । प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा ।
एहू मिस देखउँ पद जाई । करि बिनती आनउँ दोउ भाई ।
ग्यान-बिराग-सकल-गुन-अयना । सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ।

दो०—बहु बिधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार ।
करि मज्जन सरजूजल, गये भूप दरबार ॥५७॥

मुनि आगमन सुना जब राजा । मिलन गयउ लेइ बिप्र समाजा ।
करि दंडवत मुनिहिं सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ।
चरन पखारि कीन्ह अति पूजा । मो सम आजु धन्य नहिं दूजा ।
बिबिध भाँति भोजन करवावा । मुनिबर हृदय हरष अति पावा ।

पुनि चरनन्हि मेले सुत चारी । राम देखि मुनि देह बिसारी ।
भये मगन देखत मुखसोभा । जनु चकोर पूरन ससि लोभा ।
तब मन हरषि बचन कह राऊ । मुनि अस कृपा न कीन्हेहु काऊ ।
केहि कारन आगमन तुम्हारा । कहहु सो करत न लावउँ बारा ।
असुरसमूह सतावहिं मोही । मैं जाचन आयउँ नृप तोही ।
अनुज समेत देहु रघुनाथा । निसि-चर-बध मैं होब सनाथा ।

दो०—देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अज्ञान ।
धर्म सुजस प्रभु तुम कहँ, इन्ह कहँ अति कल्यान ॥५८॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी । हृदय कंप मुखदुति कुम्हिलानी ।
चौथेपन पायहुँ सुत चारी । विप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी ।
माँगहु भूमि धेनु धन कोसा । सरबस देउँ आजु सह रोसा ।
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं । सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ।
सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाईं । राम देत नहिं बनइ गोसाईं ।
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा । कहँ सुंदर सुत परम किसोरा ।
सुनि नृपगिरा प्रेम-रस-सानी । हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी ।
तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा । नृपसंदेह नास कहँ पावा ।
अति आदर दोउ तनय बोलाये । हृदय लाइ बहु भांति सिखाये ।
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ । तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ।

दो०—सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहु बिधि देइ असीस ।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पद सीस ॥५९॥

सो०—पुरुषसिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि-भय-हरन ।
कृपासिंधु मतिधीर, अखिल-बिस्व-कारन-करन ॥६०॥

अरुन नयन उर बाहु बिशाला । नीलजलज तनु स्याम तमाला ।
कटि पट पीत कसे बर भाथा । रुचिर-चाप-सायक दुहुँ हाथा ।
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । बिश्वामित्र महानिधि पाई ।
प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना । मोहि हित पिता तजेउ भगवाना ।
चले जात मुनि दीन्हि देखाई । सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।

एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।
तब रिषि निज नाथहि जिय चीन्ही। बिद्यानिधि कहँ विद्या दीन्ही।
जा तें लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तन तेज प्रकासा।
दो०—आयुध सर्व समर्पि कै, प्रभु निज आस्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन, दीन्ह भगत हित जानि॥६१॥
प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई।
होम करन लागे मुनिझारी। आपु रहे मख की रखवारी।
सुनि मारीच निसाचर कोही। लेइ सहाय धावा मुनिद्रोही।
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा।
पावकसर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा।
मारि असुर द्विज-निर्भय-कारी। अस्तुति करहिं देव मुनि-झारी।
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया।
भगतिहेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना।
तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई।
धनुषजग्य सुनि रघु-कुल-नाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा।
आस्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं।
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिसेखी।
दो०—गौतमनारि सापबस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर॥६२॥
छंद—परसत पदपावन सोकनसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन-सुख-दायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही॥
धीरज मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा रघुपतिकृपा भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ज्ञानगम्य जय रघुराई॥
मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जन-सुख-दाई।
राजीवविलोचन भव-भय-मोचन पाहि पाहि सरनहि आई॥

मुनि साप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ संकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मतिभोरी नाथ न माँगउँ वर आना।
पद-कमल-परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करइ पाना॥
जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोइ पदपंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहि भाँति सिधारी गौतमनारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बर पावा गइ पतिलोक अनंद भरी।

दो०—अस प्रभु दीनबंधु हरि, कारनरहित दयाल।
तुलसिदास सठ ताहि भजु, छाड़ि कपट जंजाल॥२३॥

चले राम लछिमन मुनि संगा। गये जहाँ जगपावनि गंगा।
गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।
तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाये। बिबिध दान महिदेवन्ह पाये।
हरषि चले मुनि-बृंद-सहाया। बेगि बिदेह नगर नियराया।
पुररम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेखी।
बापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनिसोपाना।
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहुबरन बिहंगा।
बरन बरन बिकसे बनजाता। त्रिबिध समीर सदा सुखदाता।

दो०—सुमनबाटिका बाग बन, बिपुल बिहंगनिवास।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास॥२४॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहइँ लोभाई।
चारु बजार बिचित्र अँबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी।
धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लेइ नाना।
चौहट सुंदर गलीं सुहाई। संतत रहहीं सुगंध सिंचाई।
मंगलमय मंदिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे।
पुर-नर-नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ज्ञानी गुनवंता।
अति अनूप जहँ जनकनिवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू।

होत चकित चित कोट बिलोकी । सकल-भुवन-सोभा जनु रोकी ॥

दो०—धवलधाम मनि-पुरट-पट, सुघटित नाना भाँति ।
सियनिवास सुंदर सदन, सोभा किमि कहि जाति ॥ ६५ ॥

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा । भूप भीर नट मागध भाटा ॥
बनी बिसाल बाजि-गज-साला । हय-गय-रथ संकुल सब काला ॥
सूर सचिव सेनप बहुतेरे । नृपगृहसरिस सदन सब केरे ॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा । उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा ॥
देखि अनूप एक अँवराई । सब सुपास सब भाँति सुहाई ॥
कौसिक कहेउ मोर मन माना । इहाँ रहिय रघुबीर सुजाना ॥
भलेहि नाथ कहि कृपानिकेता । उतरे तहँ मुनि-बृंद-समेता ॥
बिस्वामित्र महामुनि आये । समाचार मिथिलापति पाये ॥

दो०—संग सचिव सुचि भूरिभट, भूसुर बर गुरु ज्ञाति ।
चले मिलन मुनिनायकहि, मुदित राउ एहि भाँति ॥ ६६ ॥

कीन्ह प्रनाम चरन धरि माथा । दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा ॥
बिप्रबृंद सब सादर बंदे । जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे ॥
कुसल प्रस्न कहि बारहिं बारा । बिस्वामित्र नृपहि बैठारा ॥
तेहि अवसर आये दोउ भाई । गये रहे देखन फुलवाई ॥
स्याम गौर मृदु बयस किसोरा । लोचन सुखद बिस्व-चित-चोरा ॥
उठे सकल जब रघुपति आये । बिस्वामित्र निकट बैठाये ॥
भये सब सुखी देखि दोउ भ्राता । बारि बिलोचन पुलकित गाता ॥
मूरति मधुर मनोहर देखी । भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेखी ॥

दो०—प्रेममगन मन जानि नृपु, करि बिबेकु धरि धीर ।
बोलेउ मुनिपद नाइ सिरु, गदगद गिरा गँभीर ॥ ६७ ॥

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक । मुनि-कुल-तिलक कि नृप-कुलपालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय बेष धरि की सोइ आवा ॥
सहज बिरागरूप मन मोरा । थकित होत जिमि चंदचकोरा ॥
ता तें प्रभु पूछउँ सतिभाऊ । कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा।
कह मुनि बिहँसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका।
ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं राम सुनि बानी।
रघु-कुल-मनि दसरथ के जाये। मम हित लागि नरेस पठाये।
दो०—रामु लषन दोउ बंधु बर, रूप-सील-बल-धाम।
मख राखेउ सब साखि जगु, जिते असुर संग्राम॥ ६८॥
मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकउँ निज पुन्यप्रभाऊ।
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनंदहू के आनँददाता।
इन्ह कै प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि।
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।
पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू।
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू। चलेउ लिवाइ नगर अवनीसू।
सुंदर सदन सुखद सब काला। तहाँ बास लेइ दीन्ह भुआला।
करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई।
दो०—रिषय संग रघु-बंस-मनि, करि भोजन बिस्राम।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवस रहा भरि जाम॥ ६९॥
लषन हृदय लालसा बिसेषी। जाइ जनकपुर आइय देखी।
प्रभुभय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं।
राम अनुजमन की गति जानी। भगतबछलता हिय हुलसानी।
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुरुअनुसासन पाई।
नाथ लषन पुर देषन चहहीं। प्रभुसकोच डर प्रगट न कहहीं।
जौं राउर आयसु मैं पावउँ। नगर देखाइ तुरत लेइ आवउँ।
सुनि मुनीस कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती।
धरम-सेतु-पालक तुम्ह ताता। प्रेमबिबस सेवक-सुख-दाता।
दो०—जाइ देखि आवहु नगर, सुखनिधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन, सुंदर बदन देखाइ॥ ७०॥
मुनि-पद-कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक-लोचन-सुख-दाता।

बालक बृंद देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मनु लोभा।
पीतबसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा।
तन अनुहरत सुचंदन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी।
केहरिकंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नाग-मनि-माला।
सुभग सोन सरसी-रुह-लोचन। बदन मयंक ताप-त्रय-मोचन।
कानन्हि कनकफूल छबि देहीं। चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं।
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक-रेख-सोभा जनु चाकी।
दो०—रुचिर चौतनी सुभग सिर, मेचक कुंचित केस।
नख-सिख-सुन्दर बंधु दोउ, सोभा सकल सुदेस॥ ७१॥
देखन नगर भूपसुत आये। समाचार पुरबासिन्ह पाये।
धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी।
निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिँ सुखी लोचन फल पाई।
जुवती भवनझरोखन्हि लागीं। निरखहिं रामरूप अनुरागीं।
कहहिं परस्पर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि-काम-छबि जीती।
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनियति नाहीं।
बिष्णुचारि भुज बिधि मुखचारी। बिकटबेख मुखपंच पुरारी।
अपर देव अस कोउ न आही। यह छबि सखी पटतरिय जाही।
दो०—बयकिसोर सुखमासदन, स्यामगौर सुखधाम।
अंग अंग पर बारियहि, कोटि कोटि सत काम॥ ७२॥
कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह अस रूप निहारी।
कोउ सप्रेम बोली मृदुबानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी।
ए दोऊ दसरथ के ढोटा। बालमरालन्ह के कल जोटा।
मुनि-कौसिक-मख के रखवारे। जिन्ह रनअजिर निसाचर मारे।
स्यामगात कल कंजबिलोचन। जो मारीच-सुभुज-मद-मोचन।
कौसल्या सुत सो सुखखानी। नाम राम धनुसायक पानी।
गौर किसोर बेष बर काछे। कर सरचाप राम के पाछे।
लछिमन नाम राम-लघु-भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता।

दो०—विघ्नकाजु करि बंधु दोउ, मग मुनिबधू उधारि।
आये देखन चापमख, सुनि हरषीं सब नारि॥ ७३॥
देखि रामछवि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई॥
जौ सखि इन्हहिं देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू॥
कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनिसमेत सादर सनमाने॥
सखि परंतु पन राउ न तजई। बिधिबस हठि अबिबेकहि भजई॥
कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिय उचित-फल-दाता॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू। नाहिन आलि इहाँ संदेहू॥
जौं बिधिबस अस बनइ सँजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू॥
सखि हमरे आरति अति ताते। कबहुँक ए आवहिं एहि नाते॥
दो०—नाहिं त हम कहँ सुनहु सखि, इन्ह कर दरसन दूरि।
यह संघट तब होइ जब, पुन्य पुराकृत भूरि॥ ७४॥
बोली अपर कहेहु सखि नीका। एहि बिवाह अति हित सबही का॥
कोउ कह शंकरचाप कठोरा। ए स्यामल मृदुगात किसोरा॥
सब असमंजस अहइ सयानी। यह सुनि अपर कहइ मृदुबानी॥
सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं। बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं॥
परसि जासु पद-पंकज-धूरी। तरी अहिल्या कृत-अघ-भूरी॥
सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरे। यह प्रतीति परिहरिय न भोरे॥
जेहि बिरंचि रचि सीय सवाँरी। तेहि स्यामल बरु रचेउ बिचारी॥
तासु बचन सुनि सब हरषानी। एसइ होउ कहहिं मृदुबानी॥
दो०—हिय हरषहिं बरषहिं सुमन, सुमुखि-सुलोचनि-बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ, तहँ तहँ परमानंद॥ ७५॥
पुर पूरबदिसि गे दोउ भाई। जहँ धनु-मख-हित भूमि बनाई॥
अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सवाँरी॥
चहुँ दिसि कंचनमंच बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला॥
तेहि पाछे समीप चहुँ पासा। अपर मंचमंडली बिलासा॥
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहिं नगर लोग जहं जाई॥

तिन्ह के निकट बिसाल सुहाये। धवलधाम बहु बरन बनाये।
जहँ बैठे देखहिं सब नारी। जथाजोग निज कुल अनुहारी।
पुर बालक कहि कहि मृदुबचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना।
दो०—सब सिसु एहि मिस प्रेमबस, परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरष हिय, देखि देखि दोउ भ्रात ॥७६॥
सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीतिसमेत निकेत बखाने।
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई।
राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना।
लवनिमेष महँ भुवननिकाया। रचइ जासु अनुसासन माया।
भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष-मख-साला।
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं।
जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजनप्रभाउ देखावत सोई।
कहि बातैं मृदु मधुर सुहाई। किये बिदा बालक बरिआई।
दो०—सभय सप्रेम बिनीत अति, सकुच-सहित दोउ भाई।
गुरु-पद-पंकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ ॥ ७७ ॥
निसि प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा। सबही संध्याबंदन कीन्हा।
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुगजाम सिरानी।
मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चाँपन दोउ भाई।
जिन्ह के चरनसरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी।
तेइ दोउ बन्धु प्रेम जनु जीते। गुरुपद कमल पलोटत प्रीते।
बार बार मुनि अज्ञा दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही।
चाँपत चरन लषन उर लाये। सभय सप्रेम परम सचुपाये।
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पदजलजाता।
दो०—उठे लषन निसि बिगत सुनि, अरुन-सिखा-धुनि कान।
गुरु तेँ पहिलेहि जगतपति, जागे राम सुजान ॥ ७८ ॥
सकल सौच करि जाय नहाये। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाये।
समय जानि गुरुआयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।

भूपबाग बर देखेउ जाई। जहँ बसंतरितु रही लोभाई।
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलबिताना।
नव पल्लव फल सुमन सुहाये। निज संपति सुररूख लजाये।
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा।
मध्य बाग सर सोह सुहावा। मनिसोपान बिचित्र बनावा।
बिमल सलिल सरसिज बहु रंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा।

दो०—बागु तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत॥ ७९॥

चहुँ दिसि चितइ पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदितमन।
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरजापूजन जननि पठाई।
संग सखी सब सुजन सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी।
सरसमीप गिरिजागृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा।
मज्जन करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदितमन गौरिनिकेता।
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बर माँगा।
एक सखी सिय संग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई।
तेइ दोउ बन्धु बिलोके जाई। प्रेमबिबस सीता पहिं आई।

दो०—तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक गात जल नयन।
कहु कारन निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बयन॥ ८०॥

देखन बाग कुँअर दुइ आये। बयकिसोर सब भाँति सुहाये।
स्याम गौर किमि कहउँ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।
सुनि हरषीं सब सखी सयानी। सियहिय अति उतकंठा जानी।
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आये काली।
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर-नर नारी।
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखियहि देखन जोगू।
तासु बचन अति सियहि सुहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने।
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातनि लखइ न कोई।

दो०—सुमरि सीय नारदवचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसुमृगी सभीत ॥८१॥

कंकन-किंकिनि-नूपुर-धुनि सुनि। कहत लषन सन राम हृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्वबिजय कहँ कीन्ही।
अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा। सिय-मुख ससि भये नयन चकोरा
भये बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल।
देखि सीयसोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई।
सुंदरता कहँ सुंदर करई। छबिगृह दीपसिखा जनु बरई।
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरउँ बिदेहकुमारी।

दो०—सिय सोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समयअनुहारि ॥ ८२ ॥

तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई।
पूजन गौरि सखीं लेइ आईं। करत प्रकास फिरइ फुलवाई।
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।
सो सब कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरैं न काऊ।
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी।
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन डीठी।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं।

दो०—करत बतकही अनुज सन, मन सियरूप लुभान।
मुख-सरोज-मकरंद-छबि, करइ मधुप इव पान ॥ ८३ ॥

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गये नृपकिसोर मनचिंता।
जहँ बिलोकि मृग-सावक-नयनी। जनु तहँ बरसि कमल-सित-स्रेनी।
लता ओट तब सखिन लखाये। स्यामल गौर किसोर सुहाये।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।
थके नयन रघु-पति-छबि देखे। पलकन्हिहू परिहरीं निमेखे।

अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरदससिहि जनु चितव चकोरी।
लोचनमग रामहि उर आनी। दीन्हे पलककपाट सयानी।
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानीं। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानीं।

दो०—लताभवन तें प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल बिधु, जलदपटल बिलगाइ॥ ८४॥

सोभासीवँ सुभग दोउ बीरा। नील-पीत-जलजाभ-सरीरा।
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छा बिच बिच कुसुमकली के।
भाल तिलक स्रमबिंदु सुहाये। स्रवन सुभग भूषन छबि छाये।
बिकट भृकुटि कच घूँघरवारे। नवसरोज लोचन रतनारे।
चारु चिबुक नासिका कपोला। हासबिलास लेत मन मोला।
मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं।
उर मनिमाल कंबुकल ग्रीवाँ। काम-कलभ-कर भुज बलसींवाँ।
सुमनसमेत बाम कर दोना। साँवर कुअँर सखी सुठि लोना।

दो०—केहरिकटि पट पीत धर, सुखमा-सील-निधान।
देखि भानु-कुल-भूषनहि, बिसरा सखिन्ह अपान॥ ८५॥

धरि धीरज एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी।
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू।
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे।
नखसिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पितापन मन अति छोभा।
परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयो गहरु सब कहहिं सभीता।
पुनि आउब एहि बिरियाँ काली। अस कहि मन बिहँसी एक आली।
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयेउ बिलंब मातुभय मानी।
धरि बड़ि धीर राम उर आने। फिरि आपनपौ पितुबस जाने।

दो०—देखन मिस मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीरछबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि॥ ८६॥

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति।

प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख-सनेह-सोभा-गुन-खानी॥
परम-प्रेम-मय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिखि दीन्ही॥
गई भवानीभवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर-जोरी॥
जय जय गिरि-बर-राज-किसोरी। जय महेस-मुख-चन्द चकोरी॥
जय गज-बदन-षडानन-माता। जगतजननि दामिनि दुति-गाता॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव बेद नहिं जाना॥
भव-भव-बिभव-पराभव-कारिनि। बिस्वबिमोहनि स्व-बस-बिहारिनि॥

दो०—पतिदेवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिं, सहस सारदा सेष॥ ८७॥

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायिनि त्रिपुरारि पियारी॥
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥
मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सबही के॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेही॥
विनय-प्रेम-बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥
सादर सियप्रसाद सिर धरेउ। बोली गौरि हरषु उर भरेउ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पुजिहि मनकामना तुम्हारी॥
नारद वचन सदा सुचि साचा। सो बर मिलिहि जाहि मन राचा॥

छंद—मन जाहि राचेउ मिलिहि सो बर सहज सुन्दर साँवरो।
करुनानिधान सुजान सीलसनेह जानत रावरो॥
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सियसहित हिय हरषत अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥

सो०—जानि गौर अनुकूल, सिय-हिय-हरष न जात कहि।
मंजुल-मंगल-मूल, बाम अंग फरकन लगे॥ ८८॥

हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरुसमीप, गवने दोउ भाई॥
राम कहा सब कौसिक पाहीं। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं॥
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहुं भाइन्ह दीन्ही॥
सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। राम लषन सुनि भये सुखारे॥

करि भोजन मुनिवर विज्ञानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी।
विगत दिवस गुरुआयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई।
प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा। सिय-मुख-सरिस देखि सुख पावा।
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं। सीय-बदन-सम हिमकर नाहीं।

दो०—जनम सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंकु।
सिय-मुख-समता पाव किमि, चंद बापरो रंकु ॥ ८९ ॥

घटइ बढ़इ बिरहिनि-दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई।
कोक-सोक-प्रद पंकजद्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही।
वैदेही-मुख पटतर दीन्हे। होत दोष बड़ अनुचित कीन्हे।
सिय-मुख-छवि विधुब्याज बखानी। गुरु पहिं चले निसा बड़ि जानी।
करि मुनि-चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह विस्रामा।
विगत निसा रघुनायक जागे। बंधु विलोकि कहन अस लागे।
उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज-लोक-कोक-सुख-दाता।
बोले लषन जोर जुग पानी। प्रभु-प्रभाव-सूचक मृदु बानी।

दो०—अरुनउदय सकुचे कुमुद, उडु-गन-जोति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन ॥ ९० ॥

नृप सब नखत करहिं उँजियारी। टारि न सकहिं चापतम भारी।
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना।
ऐसेहि प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुखारे।
उयेउ भानु बिनु स्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा।
रवि निज-उदय-ब्यांज रघुराया। प्रभुप्रताप सब नपन्ह दिखाया।
तव भुज-बल-महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटनपरिपाटी।
बंधुबचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने।
नित्य क्रिया करि गुरु पहिं आये। चरनसरोज सुभग सिर नाये।
सतानंद तब जनक बोलाये। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाये।
जनकबिनय तिन्ह आनि सुनाई। हरषे बोलि लिये दोउ भाई।

दो० - सतानंदपद बंदि प्रभु, बैठे गुरु पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहउ तब, पठएउ जनक बोलाइ॥ ६१॥
सीयस्वयंवर देखिय जाई। ईस काहि धौं देइ बड़ाई।
लषन कहा जसभाजन सोई। नाथ कृपा तव जा पर होई।
हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्ह असीस सबहि सुख मानी।
पुनि मुनि-बृंद-समेत कृपाला। देखन चले धनुष-मख-साला।
रंगभूमि आये दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई।
चले सकल गृहकाज बिसारी। बाल जुवान जरठ नर नारी।
देखी जनक भीर भइ भारी। सुचि सेवक सब लिये हँकारी।
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू।
दो० — कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥ ६२॥
राजकुअँर तेहि अवसर आये। मनहुँ मनोहरता तन छाये।
गुनसागर नागर बर बीरा। सुंदर स्यामल-गौर-सरीरा।
राजसमाज बिराजत रूरे। उडुगन महँ जनु जुग बिधु पूरे।
जिन्ह के रही भावना जैसी। प्रभुमूरति तिन्ह देखी तैसी।
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहुं बीररस धरे सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुं भयानक मूरति भारी।
रहे असुर छल छोनिप बेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा।
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन-सुख-दाई।
दो०—नारि बिलोकहिं हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत शृंगार धरि, मूरति परम अनूप॥ ६३॥
बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा। बहु-मुख-कर-पग-लोचन-सीसा।
जनकजाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे।
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसुसम प्रीति न जाय बखानी।
जोगिन्ह परम-तत्व-मय भासा। सांत-सुद्ध-सम सहज प्रकासा।
हरिभगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब-सुख-दाता।

रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया।
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कवि कोऊ।
जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोसलराऊ।

दो०- राजत राजसमाज महँ, कोसल-राज-किसोर।
सुंदर-स्यामल-गौर-तनु, बिस्व-बिलोचन-चोर ॥ ९४ ॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि-काम-उपमा लघु सोऊ।
सरद-चंद-निंदक मुख नीके। नीरजनयन भावते जी के।
चितवनि चारु मार-मद हरनी। भावत हृदय जात नहिं बरनी।
कलकपोल स्रुतिकुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला।
कुमुद-बंधु-कर-निंदक हाँसा। भृकुटी विकट मनोहर नासा।
भाल विसाल तिलक झलकाहीं। कच विलोकि अलि अवलि लजाहीं।
पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई। कुसुमकली बिच बीच बनाई।
रेखा रुचिर कंबु कलग्रीवाँ। जनु त्रिभुवनसोभा की सीवाँ।

दो०—कुंजर-मनि-कंठाकलित, उरन्ह तुलसिकामाल।
वृषभकंध केहरिठवनि, बलनिधि बाहु बिसाल ॥९५॥

कटि तूनीर पीत पट बाँधे। कर सर धनुष बाम बर काँधे।
पीत-जज्ञ-उपवीत सोहाये। नखसिख मंजु महा छवि छाये।
देखि लोग सब भये सुखारे। एकटक लोचन टरत न टारे।
हरपे जनक देखि दोउ भाई। मुनि-पद-कमल गहे तब जाई।
कर विनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई।
जहँ जहँ जाहिं कुअँर वर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सब कोऊ।
निज निज रुख रामहि सब देखा। कोउ न जान कछु मरम बिसेखा।
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महा सुख लहेऊ।

दो०—सब मंचन्ह तें मंच एक, सुंदर बिसद बिसाल।
मुनिसमेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल ॥ ९६ ॥

प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे। जनु राकेस उदय भय तारे।
असप्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं।

बिनु भंजेहु भवधनुष बिसाला। मेलिहि सीय रामउर माला।
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जस प्रताप बल तेज गवाँई।
बिहँसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी।
तोरेहु धनुष ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरे को कुअँरि बियाहा।
एक बार कालहु किन होऊ। सियहित समर जितब हम सोऊ।
यह सुनि अपर भूप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने।

सो०—सीय बियाहब राम, गरब दूर करि नृपन्ह को।
जीति को सकि संग्राम, दसरथ के रनबाँकुरे॥ ९७॥

बृथा मरहु जनि गाल बजाई। मनमोदकन्हि कि भूख बुताई।
सिख हमार सुनि परम पुनिता। जगदंबा जानहु जिय सीता।
जगतपिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी।
सुंदर सुखद सकल-गुन-रासी। ए दोउ बंधु संभु-उर-बासी।
सुधासमुद्र समीप बिहाई। मृगजल निरखि मरहु कत धाई।
करहु जाइ जा कहँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनमफल पावा।
अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे।
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहिं सुमन करहिं कल गाना।

दो०—जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुंदर सकल, सादर चलीं लेवाइ॥ ९८॥

सियसोभा नहिं जाय बखानी। जगदंबिका रूप-गुन-खानी।
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत -नारि -अंग -अनुरागी।
सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकबि कहाइ अजस को लेई।
जौं पटतरिय तीय महँ सीया। जग अस जुबति कहाँ कमनीया।
गिरा मुखर तनुअरध भवानी। रति अतिदुखित अतनुपति जानी।
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रामासम किमि बैदेही।
जौं छबि-सुधा-पयो-निधि होई। परम-रूप-मय कच्छप सोई।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथइ पानिपंकज निज मारू।

दो०—एहि विधि उपजइ लच्छि जब, सुन्दरता-सुख-मूल ।
तदपि सकोचसमेत कवि, कहहिं सीय सम तूल ॥ ९९ ॥

चली संग लइ सखी सयानी । गावति गीत मनोहर बानी ।
सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगतजननि अतुलित छवि भारी ।
भूषन सकल सुदेस सोहाये । अंग अंग रचि सखन्हि बनाये ।
रंगभूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे नर नारी ।
हरषि सुरन्ह दुंदभी बजाई । बरपि प्रसून अपछरा गाई ।
पानिसरोज सोह जयमाला । अवचट चितये सकल भुआला ।
सीय चकित चित रामहि चाहा । भये मोहवस सब नरनाहा ।
मुनिसमीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ।

दो०—गुरु-जन-लाज समाज बड़, देखि सीय सकुचानि ।
लगी बिलोकन सखिन्ह तन, रघुबीरहि उर आनि ॥ १०० ॥

राम रूप अरु सियछवि देखी । नरनारिन्ह परिहरी निमेखी ।
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं । बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ।
हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई । मति हमार असि देहि सुहाई ।
बिनु बिचार पन तजि नरनाहू । सीय राम कर करइ बियाहू ।
जग भल कहहि भाव सब काहू । हठ कीन्हे अंतहु उर दाहू ।
एहि लालसा मगन सब लोगू । बर साँवरो जानकी जोगू ।
तब बंदीजन जनक बोलाये । बिरदावली कहत चलि आये ।
कह नृप जाइ कहहु पन मोरा । चले भाट हिय हरष न थोरा ।

दो०—बोले बंदी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल ।
पन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल ॥ १०१ ॥

नृप-भुज-बलु-बिधु सिवधनु-राहू । गरुअ कठोर बिदित सब काहू ।
रावन बान महा भट भारे । देखि सरासन गवहिं सिधारे ।
सोइ पुरारिकोदंड कठोरा । राजसमाज आजु जेइ तोरा ।
त्रि-भुवन-जय-समेत बैदेही । बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही ।
सुनि पन सकल भूप अभिलाषे । भट मानी अतिसय मन माखे ।

परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिरु नाई।
तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बल करहीं।
जिन्ह के कछु बिचार मन माहीं। चापसमीप महीप न जाहीं।

दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट-बाहु-बल, अधिक अधिक गरुआइ ॥ १०२ ॥

भूप सहसदस एकहिं बारा। लगे उठावन टरइ न टारा।
डगइ न संभुसरासन कैसे। कामी बचन सतीमन जैसे।
सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग सन्यासी।
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चापकर बरबस हारी।
ओहत भये हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा।
नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने।
दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना।
देव दनुज धरि मनुजसरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा।

दो०—कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनुदमनीय ॥ १०३ ॥

कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहू न शंकरचाप चढ़ावा।
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सके छुड़ाई।
अब जनि कोउ माखइ भट मानी। बीरबिहीन मही मैं जानी।
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहिबियाहू।
सुकृत जाइ जौं पन परिहरऊँ। कुअँरि कुआँरि रहउ का करऊँ।
जौं जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई। तौ पन करि होतेउँ न हँसाई।
जनकबचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भये दुखारी।
माखे लषन कुटिल भइँ भौंहैं। रदपट फरकत नयन रिसौहैं।

दो०—कहि न सकत रघु-बीर-डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम-पद-कमल सिर, बोले गिरा प्रमान ॥ १०४ ॥

रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई।
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघु-कुल-मनि जानी।

सुनहु भानु - कुल -पंकज - भानू। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू।
जौं तुम्हार अनुसासन पावउँ। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावउँ।
काँचे घट जिमि डारउँ फोरी। सकउँ मेरु मूलक इव तोरी।
तव प्रतापमहिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना।
नाथ जानि 'अस आयसु होऊ। कौतुक करउँ बिलोकिय सोऊ।
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावउँ। जोजन सत प्रमान लेइ धावउँ।

दो०—तोरउँ छत्रकदंड जिमि, तव प्रतापबल नाथ।
जौं न करउँ प्रभु-पद-सपथ, कर न धरउँ धनु भाथ॥ १०५॥

लषन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले।
सकल लोक सब भूप डेराने। सियहिय हरष जनक सकुचाने।
गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं।
सयनहिं रघुपति लषन निवारे। प्रेमसमेत निकट बैठारे।
बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति – सनेह – मय बानी।
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनकपरितापा।
सुनि गुरुबचन चरन सिरु नावा। हरष बिषाद न कछु उर आवा।
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये। ठवनि जुवा मृगराज लजाये।

दो०—उदित उदय-गिरि-मंच पर, रघुबर बालपतंग।
बिगसे संतसरोज सब, हरषे लोचनभृंग॥ १०६॥

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने।
भये बिसोक कोक मुनि देवा। बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा।
गुरुपद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा।
सहजहि चले सकल-जग-स्वामी। मत्त - मंजु - बर - कुंजर -गामी।
चलत राम सब पुर- नर - नारी। पुलक - पूरि - तन भये सुखारी।
बंदि पितर सब सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाव हमारे।
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहिं राम गनेस गोसाईं।

दो०—रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीतामातु सनेहवस, बचन कहइ बिलखाइ ॥१०७॥
सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे।
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं। ए बालक अस हठ भल नाहीं।
रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा।
सो धनु राज-कुअँर-कर देहीं। बालमराल कि मंदर लेहीं।
भूपसयानप सकल सिरानी। सखि बिधिगति कहि जाति न जानी।
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिय न रानी।
कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा। सोखेउ सुजस सकल संसारा।
रबिमंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रि-भुवन-तम भागा।
दो०—मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महा-मत्त-गज-राज कहँ, बस कर अंकुस खर्ब ॥१०८॥
काम कुसम-धनु-सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे।
देबि तजिय संसय अस जानी। भंजब धनुष राम सुनु रानी।
सखी बचन सुनि भइ परतीती। मिटा बिषाद बढ़ी अति प्रीती।
तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही।
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होउ प्रसन्न महेस भवानी।
करहु सुफल आपन सेवकाई। करि हित हरहु चापगरुआई
गननायक बरदायक देवा। आजु लगे कीन्हेउँ तव सेवा।
बार बार सुनि बिनती मोरी। करहु चापगरुता अति थोरी।
दो०—देखि देखि रघु-बीर-तन, सुर मानव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेमजल, पुलकावली सरीर ॥१०९॥
नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितुपनु सुमिरि बहुरि मन छोभा।
अहह तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी।
सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुधसमाज बड़ अनुचित होई।
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा।
बिधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा। सिरि स-सुमन-कन बेधिय हीरा।

सकल सभा कै मति भइ भोरी। अब मोहि संभु-चाप-गति तोरी।
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी।
अति परिताप सीयमन माहीं। लवनिमेष जुगसय सम जाहीं।
दो०—प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज-मीन-जुग, जनु विधुमंडल डोल ॥२१०॥
गिराअलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाजनिसा अवलोकी।
लोचनजल रह लोचनकोना। जैसे परम कृपन कर सोना।
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीति उर आनी।
तन मन वचन मोर पन साचा। रघु-पति-पद-सरोज चितु राचा।
तौ भगवान सकल उर वासी। करिहहिं मोहि रघुवर कै दासी।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू।
प्रभुतन चितइ प्रेमपन ठाना। कृपानिधान राम सब जाना।
सियहि विलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसे।
दो०—लषन लखेउ रघु-वंस-मनि, ताकेउ हरकोदंड।
पुलकि गात बोले वचन, चरन चाँपि ब्रह्मंड ॥२११॥
दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।
राम चहहिं शंकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा।
चापसमीप राम जब आये। नरनारिन्ह सुर सुकृत मनाये।
सब कर संसय अरु अज्ञानू। मंदमहीपन्ह कर अभिमानू।
भृगुपति केरि गरबगरुआई। सुर-मुनि-बरन्ह केरि कदराई।
सिय कर सोच जनकपछितावा। रानिन्ह कर दारुन-दुख-दावा।
संभुचाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाइ सब संग बनाई।
राम-बाहु-बल-सिंधु अपारू। चहत पार नहिं कोउ कनहारू।
दो०—राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विसेखि ॥२१२॥
देखी विपुल विकल वैदेही। निमिष विहात कलपसम तेही।
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुये करइ का सुधताड़ागा।

का बरषा जब कृषी सुखाने। समय चुके पुनि का पछिताने।
अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी।
गुरुहि प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा।
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ-मंडल-सम भयऊ।
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा।

छंद—भरि भुवन घोर कठोर रव रबिबाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

सो०—शंकरचाप जहाज, सागर रघुबर-बाहु-बल।
बूड़ सो सकल समाज, चढ़े जो प्रथमहिं मोहबस॥११३॥

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भये सुखारे।
कौसिक-रूप-पयोनिधि पावन। प्रेमबारि अवगाह सुहावन।
राम-रूप-राकेस निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी।
बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना।
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहिं प्रसंसहिं देहिं असीसा।
बरषहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किन्नर गीत रसाला।
रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष-भंग-धुनि जात न जानी।
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी।

दो०—बंदी मागध सूतगन, बिरद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब, हय गय मनि धन चीर॥११४॥

झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई।
बाजहिं बहु बाजने सुहाये। जहँ तहँ जुवतिन्ह मंगल गाये।
सखिन्ह सहित हरषीं सब रानी। सूखत धानु परा जनु पानी।
जनक लहेउ सुख सोच बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई।
श्रीहत भये भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीपछबि छूटे।

सियमुखहि बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलस्वाती।
रामहि लखन बिलोकत कैसे। ससिहि चकोरकिसोरकु जसे।
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीता गमन राम पहिं कीन्हा।

दो०—संग सखी सुंदर चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल-मराल-गति, सुखमा अंग अपार॥ २२५॥

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छबि-गन-मध्य महाछबि जैसी।
करसरोज जयमाल सुहाई। बिस्व-बिजय-सोभा जनु छाई।
तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू।
जाइ समीप रामछबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी।
चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई।
सुनत जुगलकर माल उठाई। प्रेमबिबस पहिराइ न जाई।
सोहत जनु जुगजलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला।
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल रामउर मेली।

सो०—रघुबर उर जयमाल, देखि देव बरषहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रबि कुमुदगन॥ २२६॥

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भये मलिन साधु सब राजे।
सुर किन्नर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा।
नाचहिं गावहिं बिबुधबधूटी। बार बार कुसुमावलि छूटी।
जहँ तहँ बिप्र बेदधुनि करहीं। बंदी बिरदावलि उच्चरहीं।
महि पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा।
करहिं आरती पुर-नर-नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी।
सोहति सीय राम कै जोरी। छबि सिंगार मनहुँ एक ठोरी।
सखी कहहिं प्रभुपद गहु सीता। करत न चरनपरस अति भीता।

दो०—गौतम-तिय-गति सुरति करि, नहिं परसति पग पानि।
मन बिहँसे रघु-बंस-मनि, प्रीति अलौकिक जानि॥ २२७॥

तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे।
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे।

लेहु छुड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृपबालक दोऊ।
तोरे धनुष चाँड नहिं सरई। जीवत हमहिं कुअँरि को बरई।
जौं विदेह कछु करइ सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई।
साधुभूप बोले सुनि बानी। राजसमाजहिं लाज लजानी।
बलु प्रतापु बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहिं संग सिधाई।
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ बिधि मुह मसि लाई।

दो०—देखहु रामहिं नयन भरि, तजि इरषा मद कोहु।
लषन-रोष-पावक-प्रबलु, जानि सलभ जनि होहु ॥११८॥

बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि सस चहइ नाग-अरि-भागू।
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब संपदा चहइ सिवद्रोही।
लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई।
हरि पद-बिमुख परमगति चाहा। तस तुम्हार लालच नरनाहा।
कोलाहल सुनि सीय सकानी। सखी लेवाइ गइ जहँ रानी।
राम सुभाय चले गुरु पाहीं। सियसनेहु बरनत मन माहीं।
रानिन्ह सहित सोचबस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया।
भूपबचन सुनि इत उत तकहीं। लषन रामडर बोलि न सकहीं।

दो०—अरुन नयन भकुटी कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त-गज-गन निरखि, सिंहकिसोरहि चोप ॥११९॥

खरभर देखि बिकल पुरनारी। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी।
तेहि अवसर सुनि सिव-धनु-भंगा। आये भृगु-कुल-कमल-पतंगा।
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने।
गौरसरीर भूति भलि भ्राजा। भालबिसाल त्रिपुंड बिराजा।
सीस जटा ससिबदन सुहावा। रिसिबस कछुक अरुन होइ आवा।
भकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते।
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला।
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे।

दो०—संत बेस करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीररस, आयउ जहँ सब भूप ॥१२०॥

देखत भृगु-पति-बेषु कराला। उठे सकल भयबिकल भुआला।
पितु समेत कहि निज निज नामा। लगे करन सब दंडप्रनामा।
जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानइ जनु आइ खुटानी।
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा।
आसिष दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज लेइ गईं सयानी।
बिस्वामित्र मिले पुनि आई। पदसरोज मेले दोउ भाई।
राम लषन दसरथ के ढोटा। देख असीस दीन्हि भल जोटा।
रामहिं चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार-मद-मोचन।

दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप सरीर ॥१२१॥

समाचार कहि जनक सुनाये। जेहि कारन महीप सब आये।
सुनत बचन तब अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे।
अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा।
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटहुँ महि जहँ लगि तव राजू।
अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं।
सुर मुनि नाग नगर-नर-नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी।
मन पछिताति सीयमहतारी। बिधि अब सवरी बात बिगारी।
भृगुपति कर सुभाव सुनि सीता। अरध निमेष कलपसम बीता।

दो०—सभय बिलोके लोग सब, जानि जानिकी भीर।
हृदय न हरष बिषाद कछु, बोले श्रीरघुबीर ॥ १२२ ॥

नाथ संभु-धनु-भंजनि-हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा।
आयसु काह कहिय किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही।
सेवक सो जो करइ सेवकाई। अरिकरनी करि करिय लराई।
सुनहु राम जेइ सिवधनु तोरा। सहस-बाहु-सम सो रिपु मारा।
सो बिलगाउ बिहाय समाजा। न त मारे जइहैं सब राजा।

सुनि मुनिवचन लषन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने।
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्ह गोसाईं।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगु-कुल-केतू।

दो०—रे नृपबालक कालबस, बोलत तोहि न सँभार।
धनुहीं सम त्रि-पुरारि-धनु, विदित सकल संसार॥ १२३॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना।
का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नयेन के भोरे।
छुवत टूट रघुपतिहु न दोषू। मुनि बिनु काज करिय कत रोषू।
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाव न मोरा।
बालक बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही।
बालब्रह्मचारी अतिकोही। बिस्वबिदित छत्रिय-कुल-द्रोही।
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही।
सहस-बाहु-भुज-छेदनि-हारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा।

दो०—मातु पितहि जनि सोचबस, करसि महीपकिसोर।
गरभन के अरभकदलन, परसु मोर अतिघोर॥ १२४॥

बिहँसि लषन बोले मृदुबानी। अहो मुनीस महाभट मानी।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारु। चहत उड़ावन फूँकि पहारु।
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।
देखि कुठार सरासन बाना। मैं कछु कहेउँ सहित अभिमाना।
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहेउ सहउँ रिस रोकी।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई।
बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहू पा परिय तुम्हारे।
कोटि-कुलिस-सम बचन हमारा। ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा।

दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगु-बंस-मनि, बोले गिरा गँभीर॥ १२५॥

कौसिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल कालबस निजकुल-घालक।
भानु-बंस-राकेस-कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू।

कालकवलु होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं।
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा।
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुम्हहिं अछत को बरनइ पारा।
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।
नहि संतोष तौ पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू।
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा।

दो०—सूर समय करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलापु॥ १२६॥

तुम्ह तौ काल हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा।
सुनत लषन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा।
अब जनि देइ दोष मोहि लोगू। कटुबादी बालक बधजोगू।
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरनहार भा साँचा।
कौसिक कहा छमिय अपराधू। बाल-दोष-गुन गनहिं न साधू।
कर कुठार मैं अकरनकोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही।
उतर देत छाँडउँ बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे।
न तु एहि काटि कुठार कुठोरे। गुरहिं उरिन होतेउँ स्रम थोरे।

दो०—गाधिसूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि, अजहुँ न बूझ अबूझ॥ १२७॥

कहेउ लषन मुनि सील तुम्हारा। को नहिं जान विदित संसारा।
माता पितहि उरिन भये नीके। गुरुरिन रहा सोच बड़ जीके।
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गयेउ ब्याज बहु बाढ़ा।
अब आनिय व्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली।
सुन कटुबचन कुठारु सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा।
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउ नृपद्रोही।
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के बाढ़े।
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहि लषन निवारे।

दो०—लषन उतर आहुति सरिस, भृगु-बर-कोप कृसानु ।
बढ़त देखि जलसम बचन, बोले रघु-कुल-भानु ॥ १२८ ॥

नाथ करहु बालक पर छोहू । सूध दूधमुख करिय न कोहू ।
जौं पै प्रभुप्रभाउ कछु जाना । तौ कि बराबरि करइ अयाना ।
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं । गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ।
करिय कृपा सिसु सेवक जानी । तुम्हसम सील धीर मुनि ज्ञानी ।
रामबचन सुनि कछुक जुड़ाने । कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने ।
हँसत देखि नखसिख रिस ब्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ।
गौर सरीर स्याम मन माहीं । काल-कूट-मुख पयमुख नाहीं ।
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही । नीच मीचुसम देख न मोही ।

दो०-लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं बिस्व प्रतिकूल ॥१२९॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया । परिहरि कोप करिय अब दाया ।
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने । बैठिय होइहहिं पाय पिराने ।
जौं अति प्रिय तौ करिय उपाई । जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई ।
बोलत लषनहिं जनक डेराहीं । मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ।
थर थर काँपहिं पुर-नर नारी । छोट कुमार खोट बड़ भारी ।
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी । रिस तन जरइ होय बलहानी ।
बोले रामहिं देइ निहोरा । बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा ।
मन मलीन तनु सुंदर कैसे । बिष-रस भरा कनकघट जैसे ।

दो०-सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम ।
गुरुसमीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ॥ १३० ॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी । बोले राम जोरि जुगपानी ।
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालकबचन करिय नहिं काना ।
बररै बालक एक सुभाऊ । इन्हहिं न संत बिदूषहिं काऊ ।
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ।
कृपा कोप बध बंध गोसाईं । मो पर करिय दास की नाईं ।

कहिय वेगि जेहि विधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करउँ उपाई।
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे।
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं काह कोप करि कीन्हा।

दो०—गर्भ स्रवहिं अवनिप-रवनि, सुनि कुठारगति घोर।
परसु अछत देखउँ जियत, बैरी भूपकिसोर॥ १३१॥

बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती।
भयेउ वाम विधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कसि काऊ।
आजु दैव दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बहुरि सिरु नावा।
बाउकृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला।
जौं पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोध भये तन राखु विधाता।
देखु जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू।
वेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृपढोटा।
बिहँसे लखन कहा मुनि पाहीं। मूँदे आँखि कतहुँ कोउ नाहीं।

दो०—परसुराम तव राम प्रति, बोले उर अति क्रोध।
संभुसरासन तोरि सठ, करसि हमार प्रबोध॥ १३२॥

बंधु कहइ कटु संमत तोरे। तूँ छल विनय करसि कर जोरे।
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिँ त छाड़ु कहाउब रामा।
छल,तजि करहि समर सिवद्रोही। बंधुसहित न त मारउँ तोही।
भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। मन मुसुकाहिं राम सिर नाये।
गुनहु लषन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू।
टेढ़ जानि बंदइ सब काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू।
राम कहेउ रिस तजहु मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा।
जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहि जानिय आपन अनुगामी।

दो०—प्रभुहि सेवकहि समर कस, तजहु विप्रवर रोसु।
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिँ दोसु॥ १३३॥

देखि कुठार-बान-धनु-धारी। भइ लरिकहि रिस बीरु बिचारी।
नाम जान पै तुम्हहिँ न चीन्हा। बंससुभाव उतरु तेइ दीन्हा।

जौँ तुम्ह अवतेहु मुनि की नाईं । पदरज सिर सिसु धरत गोसाईं ।
छमहु चूक अनजानत केरी । चहिय विप्रउर कृपा घनेरी ।
हमहिँ तुम्हहिँ सरवर कस नाथा । कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ।
राम मात्र लघु नाम हमारा । परसुसहित बड़ नाम तुम्हारा ।
देव एकगुन धनुष हमारे । नवगुन परम पुनीत तुम्हारे ।
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे । छमहु विप्र अपराध हमारे ।

दो०—वार वार मुनि विप्रवर, कहा राम सन राम ।
बोले भृगुपति सरुप होइ, तहूँ बंधुसम वाम ॥ १३४ ॥

निपटहि द्विज करि जानहि मोही । मैं जस विप्र सुनावउँ तोही ।
चाप स्रुवा सर आहुति जानू । कोप मोर अतिघोर कृसानू ।
समिध सेन चतुरंग सुहाई । महामहीप भये पसु आई ।
मैं यह परसु काटि वलि दीन्हे । समरजज्ञ जग कोटिक कीन्हे ।
मोर प्रभाव विदित नहिँ तोरे । बोलसि निदरि विप्र के भोरे ।
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा । अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा ।
राम कहा मुनि कहहु विचारी । रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी ।
छुवतहि, टूट पिनाक पुराना । मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना ।

दो०—जौँ हम निदरहि विप्र वदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भयवस नावहिँ माथ ॥ १३५ ॥

देव दनुज भूपति भट नाना । समवल अधिक होउ वलवाना ।
जौँ रन हमहिं प्रचारइ कोऊ । लरहिँ सुखेन काल किन होऊ ।
छत्रिय तनु धरि समर सकाना । कुलकलँक तेहि पाँवर जाना ।
कहउँ सुभाव न कुलहिँ प्रसंसी । कालहु डरहिँ न रन रघुवंसी ।
विप्रवंस कै असि प्रभुताई । अभय होइ जो तुम्हहिँ डेराई ।
सुनि मृदुवचन गूढ रघुपति के । उघरे पटल परसु-धर-मति के ।
राम रमापति कर धनु लेहू । खैंचहु मिटइ मोर संदेहू ।
देत चाप आपुहि चलि गयेऊ । परसुराम मन विसमय भयेऊ ।

दो०—जाना रामप्रभाव तव, पुलक प्रफुल्लित गात ।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेम समात ॥ १३६ ॥
जय रघुबंस-बनज-बन-भानू । गहन-दनुज-कुल-दहन कृसानू ।
जय सुर-विप्र-धेनु-हित-कारी । जय मद-मोह-कोह-भ्रम-हारी ।
विनय-सील-करुना-गुन-सागर । जयति बचनरचना अति नागर ।
सेवकसुखद सुभग सब अंगा । जय सरीरछवि कोटि अनंगा ।
करउँ काह मुख एक प्रसंसा । जय महेस - मन - मानस - हंसा ।
अनुचित बचन कहेउँ अज्ञाता । छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता ।
कहि जय जय जय रघु-कुल-केतू । भगुपति गये बनहिं तप हेतू ।
अपभय सकल महीप डेराने । जहँ तहँ कायर गवहिं पराने ।
दो०— देवन दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर वरपहिँ फूल ।
हरषे पुर-नर-नारि सब, मिटा मोहमय सूल ॥ १३७ ॥
अति गहगहे बाजने बाजे । सबहिँ मनोहर मंगल साजे ।
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी । करहिँ गान कल कोकिलबयनी ।
सुख विदेह कर बरनि न जाई । जनमदरिद्र मनहुँ निधि पाई ।
विगतत्रास भइ सीय सुखारी । जनु विधु उदय चकोरकुमारी ।
जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा । प्रभुप्रसाद धनु भंजेउ रामा ।
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई । अब जो उचित सो कहिय गोसाँई ।
कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना । रहा विवाह चापआधीना ।
टूटतहीं धनु भयेउ विवाहू । सुर नर नाग विदित सब काहू ।
दो०—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा-बंस ब्यवहारु ।
बूझि विप्र कुल वृद्ध गुरु, वेदविदित आचारु ॥ १३८ ॥
दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहिँ नृप दसरथहि बोलाई ।
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला । पठये दूत बोलि तेहि काला ।
बहुरि महाजन सकल बोलाये । आइ सबन्हि सादर सिरु नाये ।
हाट बाट मंदिर सुरवासा । नगर सवाँरहु चारिहु पासा ।
हरषि चले निज निज गृह आये । पुनि परिचारक बोलि पठाये ।

रचहु विचित्र वितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचुपाई।
पठये बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे वितान-बिधि-कुसल सुजाना।
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा।

दो०—हरितमनिन्ह के पत्र फल, पदुमराग के फूल।
रचना देखि विचित्र अति, मन बिरंचि कर भूल॥ १३९॥

पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन।
भूपद्वार तिन्ह खबर जनाई। दसरथ नृप सुनि लिये बोलाई।
करि प्रनाम तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आपु उठि लीन्ही।
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती।
राम लषन उर कर बर चीठी। रहि गये कहत न खाटी मीठी।
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची।
खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आये भरत सहित हित भाई।
पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहाँ ते पाती आई।

दो०—कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ, अहहिँ कहहु केहि देस।
सुनि सनेहसाने बचन, बाँची बहुरि नरेस॥ १४०॥

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेह समात न गाता।
प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुख लहेउ बिसेखी।
तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे।
भैया कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीके निज नयन निहारे।
स्यामल गौर धरे धनुभाथा। बय किसोर कौसिकमुनि साथा।
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेमबिवस पुनि पुनि कह राऊ।
जा दिन तें मुनि गये लेवाई। तब तें आजु साँचि सुधि पाई।
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने।

दो०—सुनहु महीपति-मुकुट-मनि, तुम्ह सम धन्य न कोउ।
राम लषन जिन्ह के तनय, बिस्वबिभूषन दोउ॥ १४१॥

पूछन जोग न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंह तिहुँ पुर उँजियारे।
जिन के जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे।

तिन्ह कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे । देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे ।
सीयस्वयंवर भूप अनेका । सिमिटे सुभट एक तें एका ।
संभुसरासन काहु न टारा । हारे सकल वीर वरियारा ।
तीनि लोक महँ जे भट मानी । सव कै सकति संभुधनु भानी ।
सकइ उठाइ सुरासुर मेरू । सोउ हिय हारि गयेउ करि फेरू ।
जेइ कौतुक सिवसैल उठावा । सोउ तेहि सभा पराभव पावा ।

दो०—तहाँ राम रघु-वंस-मनि, सुनिय महामहिपाल ।
भंजेउ चाप प्रयास विनु, जिमि गज पंकजनाल ॥ १४२ ॥

सुनि सरोप भृगुनायक आये । वहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाये ।
देखि रामवलु निज धनु दीन्हा । करि वहु विनय गवन वन कीन्हा ।
राजन राम अतुल वल जैसे । तेजनिधान लपन पुनि तैसे ।
कंपहिँ भूप विलोकत जा के । जिमि गज हरिकिसोर के ताके ।
देव देखि तव वालक दोऊ । अव न आँखि तर आवत कोऊ ।
दूत-वचन-रचना प्रिय लागी । प्रेम - प्रताप - वीर- रस- पागी ।
सभासमेत राउ अनुरागे । दूतन्ह देन निछावरि लागे ।
कहि अनीति ते मूँदहिँ काना । धरमु विचारि सवहिँ सुख माना ।

दो०—तव उठि भूप वसिष्ट कहँ, दीन्हि पत्रिका जाइ ।
कथा सुनाई गुरुहि सव, सादर दूत वोलाइ ॥ १४३ ॥

सुनि वोले गुरु अति सुख पाई । पुन्यपुरुप कहँ महि सुख छाई ।
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं । जद्यपि ताहि कामना नाहीं ।
तिमि सुख संपति विनहिं वोलाये । धरमसील पहिँ जाहिँ सुभाये ।
तुम्ह गुरु - विप्र - धेनु - सुर-सेवी । तसि पुनीत कौसल्या देवी ।
सुकृती तुम्ह समान जग माहीं । भयउ न है कोउ होनउ नाहीं ।
तुम्ह तें अधिक पुन्य वड़ का के । राजन राम सरिस सुत जा के ।
वीर विनीत धरम - व्रत - धारी । गुनसागर वर वालक चारी ।
तुम्ह कहँ सर्व काल कल्याना । सजहु वरात वजाइ निसाना ।

दो०—चलहु बेगि सुनि गुरुवचन, भलेहि नाथ सिरु नाई।
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह बास देवाई ॥ १४४ ॥

राजा सब रनिवास बोलाई। जनकपत्रिका बाँचि सुनाई।
सुनि संदेस सकल हरषानी। अपरकथा सब भूप बखानी।
प्रेमप्रफुल्लित राजहिँ रानी। मनहुँ सिखिनि सुनि बारिदबानी।
मुदित असीस देहिँ गुरुनारी। अति-आनंद-मगन महतारी।
लेहिँ परसपर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुड़ावहिँ छाती।
राम लषन कै कीरति करनी। बारहिँ बार भूप बर बरनी।
मुनिप्रसाद कहि द्वार सिधाये। रानिन्ह तब महिदेव बोलाये।
दिये दान आनंदसमेता। चले बिप्रबर आसिष देता।

सो०—जाचक लिये हँकारि, दीन्ह निछावरि कोटि बिधि।
चिरजीवहु सुत चारि, चक्रवर्ति दसरत्थ के ॥ १४५ ॥

भूप भरत पुनि लिये बोलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई।
चलहु बेगि रघु-बीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता।
भरत सकल साहनी बोलाये। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाये।
रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे।
सुभग सकल सुठि चंचलकरनी। अय इव जरत धरत पग धरनी।
नाना जाति न जाहिँ बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने।
तिन्ह सब छैल भये असवारा। भरतसरिस बय राजकुमारा।
सब सुंदर सब भूषन धारी। कर सरचाप तून कटि भारी।

दो०—छरे छबीले छैल सब, सूर सुजान नवीन।
जुग-पद-चर असवार प्रति, जे असि-कला-प्रवीन ॥ १४६ ॥

बाँधे बिरद बीर रनगाढ़े। निकसि भये पुर बाहिर ठाढ़े।
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना।
रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाये। ध्वज पताक मनि भूषन लाये।
चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु - जान - सोभा अपहरहीं।
स्यामकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते।

सुन्दर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहिं बिलोकत मुनिमन मोहे।
जे जल चलहिं थलहिं की नाईं। टाप न बूड़ बेगि अधिकाईं।
अस्त्र सस्त्र सब साज बनाई। रथी सारथिन्ह लिये बोलाई।
दो०—चढ़ि चढ़ि रथ बाहिर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुन्दर सबन्हि, जो जेहि कारज जात॥ १४७॥
कलित करिवरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सवाँरी।
चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन-घन-राजी।
बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना।
तिन्ह चढ़ि चले बिप्र-बर बृंदा। जनु तनु धरे सकल-स्रुति-छंदा।
मागध सूत बंदि गुनगायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक।
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती।
कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनइ पारा।
चले सकल-सेवक-समुदाई। निज-निज-साजु-समाजु बनाई।
दो०—सब के उर निर्भर हरषु, पूरित पुलक सरीर।
कबहि देखिबइ नयन भरि, राम लषन दोउ बीर॥ १४८॥
गरजहिं गज घंटाधुनि घोरा। रथरव बाजिहिंस चहुँ ओरा।
निदरि घनहिं घुम्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिय न काना।
महाभीर भूपति के द्वारे। रज होइ जाय पषान पवारे।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारी। लिये आरती मंगलथारी।
गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंद न जाइ बखाना।
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबि-हय-निंदक बाजी।
दोउ रथ रुचिर भूप पहि आने। नहिँ सारद पहिं जाहिँ बखाने।
राजसमाज एक रथ साजा। दूसर तेजपुंज अति भ्राजा।
दो०—तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहँ, हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि, हर गुरु गौरि गनेसु॥ १४९॥
सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसे। सुर-गुरु-संग-पुरंदर जैसे।
करि कुलरीति बेदबिधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ।

सुमिरि राम गुरुआयसु पाई। चले महीपति संख बजाई।
हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिँ सुमन सु-मंगल-दाता।
भयउ कोलाहल हय गय गाजे। ब्योम-बरात बाजने बाजे।
सुर नर नाग सुमंगल गाई। सरस राग बाजहिँ सहनाई।
घंट-घंटि-धुनि बरनि न जाहीँ। सरव करहिँ पायक फहराहीँ।
करहिँ बिदूषक कौतुक नाना। हासकुसल कलगान सुजाना।

दो०—तुरग नचावहिं कुअँर बर, अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित, डगहिँ न तालबँधान॥ १५०॥

बनइ न बरनत बनी बराता। होहिँ सगुन सुंदर सुभदाता।
चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई।
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुलदरस सब काहू पावा।
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी।
लोवा फिरि फिरि दरस देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहीं पियावा।
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगलगन जनु दीन्ह देखाई।
छेमकरी कह छेम बिसेखी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी।
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना।

दो०-मंगलमय कल्यानमय, अभिमत-फल-दातार।
जनु सब साँचे होन हित, भये सगुन एक बार॥ १५१॥

मंगल सगुन सुगम सब ताके। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जा के।
राम सरिस बर दुलहिनि सीता। समधी दसरथ जनक पुनीता।
सुनि अस ब्याह सगुन सब नाँचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे।
एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिँ हने निसाना।
आवत जानि भानु-कुल-केतू। सरितन्हि जनक बँधाये सेतू।
बीच बीच बर बास बनाये। सुर-पुर-सरिस संपदा छाये।
असन सयन बर बसन सुहाये। पावहिं सब निज निज मन भाये।
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले।

दो०—आवत जानि बरात बर, सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग, लेन चले अगवान॥ १५२॥

कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा।
भरे सुधासम सब पकवाने। भाँति भाँति नहिँ जाहिँ बखाने।
फल अनेक वर वस्तु सुहाई। हरषि भेंट हित भूप पठाई।
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहु बिधि जाना।
मंगल सगुन सुगंध सुहाये। बहुत भाँति महिपाल पठाये।
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा।
अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंद पुलक भर गाता।
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना।

दो०—हरषि परसपर मिलनहित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनंदसमुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुबेल॥ १५३॥

बस्तु सकल राखी नृप आगे। बिनय कीन्ह तिन्ह अति अनुरागे।
प्रेमसमेत राय सब लीन्हा। भइ बकसीस जाचकन्हि दीन्हा।
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहँ चले लेवाई।
बसन बिचित्र पाँवड़े परहीँ। देखि धनद धनमद परिहरहीँ।
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहँ सब भाँति सुपासा।
पितुआगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अतिआनंद अमाई।
सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीँ। पितु-दरसन-लालस मनु माहीँ।
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोष बिसेखी।
हरषि बंधु दोउ हृदय लगाये। पुलक अंग अंबक जल छाये।
चले जहाँ दसरथ जनवासे। मनहुँ सरोवर तकेउ पिपासे।

दो०—भूप बिलोके जबहिँ मुनि, आवत सुतन्ह समेत।
उठेउ हरषि सुखसिंधु महुँ, चले थाह सी लेत॥ १५४॥

मुनिहिँ दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पदरज धरि सीसा।
कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई।

पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुख न समाई।
सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे।
पुनि बसिष्ठपद सिर तिन्ह नाये। प्रेममुदित मुनिवर उर लाये।
विप्रवृंद बंदे दुहुँ भाई। मनभावती असीसैँ पाई।
भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिये उठाइ लाइ उर रामा।
हरषे लषन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम - परि - पूरित-गाता।

दो०—पुरजन परिजन जातिजन, जाचक मंत्री मीत।
मिले जथाविधि सबहि प्रभु, परम कृपालु विनीत॥ १५५॥

रामहिँ देखि बरात जुड़ानी। प्रीति की रीति न जाति बखानी।
नृपसमीप सोहहिँ सुत चारी। जनु धनधरमादिक तनुधारी।
सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित, नगर-नर-नारि विसेखी।
सुमन बरपि सुर हनहिँ निसाना। नाकनटी नाचहिँ करि गाना।
सतानंद अरु विप्र सचिवगन। मागध सूत विदुष बंदीजन।
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना।
प्रथम बरात लगन तेँ आई। ता तेँ पुर प्रमोद अधिकाई।
ब्रह्मानंद लोग सब लहहीँ। बढ़इ दिवस निसि विधि सन कहहीँ।

दो०—रामु सीय सोभाअवधि, सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिँ अस, मिलि नर-नारि-समाज॥ १५६॥
धेनु-धूलि-बेला विमल, सकल-सुमंगल-मूल।
विप्रन्ह कहेउ विदेह सन, जानि सगुन अनुकूल॥ १५७॥

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारन काहा।
सतानंद तब सचिव बोलाये। मंगल सकल साजि सब ल्याये।
संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे।
सुभग सुआसिनि गावहिँ गीता। करहिँ वेद धुनि विप्र पुनीता।
लेन चले सादर एहि भाँती। गये जहाँ जनवास बराती।
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहिँ सुरराजू।

भयउ समउ अब धारिय पाऊ। यह सुनि परा निसानहि घाऊ।
गुरुहि पूछि करि कुलविधि राजा। चले संग मुनि-साधु-समाजा।
दो०—भाग्यविभव अवधेस कर, देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहसमुख, जानि जनम निज बादि॥ १५८॥
सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना। बरषहिँ सुमन बजाइ निसाना।
सिव ब्रह्मादिक विबुधबरूथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा।
प्रेम-पुलक-तन हृदय उछाहू। चले बिलोकन रामबिआहू।
देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघु लागे।
चितवहिँ चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना।
नगर-नारि-नर रूपनिधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना।
तिन्हहिँ देखि सब सुर-सुर-नारी। भये नखत जनु बिधु उँजियारी।
बिधिहि भयउ आचरजु बिसेखी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी।
दो०—सिव समुझाये देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय बिचारहु धीर धरि, सिय-रघु-वीर-बिआहु॥ १५९॥
जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल-अमंगल-मूल नसाहीं।
करतल होहिँ पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी।
एहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगे बरबसह चलावा।
देवन्ह देखे दसरथ जाता। महामोदु मन पुलकित गाता।
साधु समाजु संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिँ सुख सेवा।
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी।
मरकत-कनक-बरन बर जोरी। देखि सुरन्ह भइ प्रीति न थोरी।
पुनि रामहिँ बिलोकि हिय हरषे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे।
दो०—रामरूप नख-सिख-सुभग, बारहिँ बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल, उमासमेत पुरारि॥ १६०॥
केकि-कंठ-दुति स्यामल अंगा। तड़ितबिनिंदक बसन सुरंगा।
ब्याहबिभूषन बिबिध बनाये। मंगलमय सब भाँति सुहाये।
सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाइ मनही मन भाई।

बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा।
राजकुअँर बर बाजि देखावहिँ। बंसप्रसंसक बिरद सुनावहि।
जेहि तुरंग पर रामु बिराजे। गति बिलोकि खगनायक लाजे।
कहि न जाय सब भाँति सुहावा। बाजिबेषु जनु काम बनावा।

छंद—जनु बाजिबेषु बनाइ मनसिजु रामहित अति सोहई।
आपने बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई।
जगमगत जीन जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

दो०—प्रभुमनसहिँ लयलीन मनु, चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घन, जनु बर बरहि नचाव॥ १६१॥

जेहि बर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदउ न बरनइ पारा।
शंकर राम-रूप-अनुरागे। नयन पंचदस अतिप्रिय लागे।
हरि हितसहित रामु जब जोहे। रमासमेत रमापति मोहे।
निरखि रामछबि बिधि हरषाने। आठै नयन जानि पछताने।
सुर-सेनप-उर बहुत उछाहू। बिधि तेँ देवढ़ सु-लोचन-लाहू।
रामहिं चितव सुरेस सुजाना। गौतमसाप परम हित माना।
देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदरसम कोउ नाहीं।
मुदित देवगन रामहि देखी। नृपसमाज दुहुँ हरष बिसेखी।

छंद—अतिहरष राजसमाजु दुहुँ दिसि दुंदुभी बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जयजयति जय रघु-कुल-मनी।
एहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं।

दो०—सजि आरती अनेक बिधि, मंगल सकल सवाँरि।
चली मुदित परिछन करन, गजगामिनि बर नारि॥ १६२॥

बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छबि रति-मद-मोचनि।
पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजे सरीरा।
सकल सुमंगल अंग बनाये। करहिँ गान कलकंठ लजाये।

कंकन किंकिन नूपुर बाजहिँ। चाल बिलोकि कामगज लाजहिँ।
बाजहिं बाजन बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगलचारा।
सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी।
कपट-नारि-बर-वेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई।
करहिं गान कल मंगलबानी। हरषबिबस सब काहु न जानी।

छंद—को जान केहि आनंदबस सब ब्रह्म बर परिछ्नन चलीं।
कलगान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भलीं।
आनंदकंद बिलोकि दूलह सकल हिय हरषित भईं।
अंभोज अंबक- अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छईं॥

दो०—जो सुख भा सिय-मातु-मन, देखि राम-बर-बेष।
सो न सकहिँ कहि कलप-सत, सहस सारदा शेष॥१६३॥

नयन नीर हटि मंगल जानी। परिछन करहिं मुदित मन रानी।
वेदबिहित अरु कुलआचारू। कीन्ह भली बिधि सब व्यवहारू।
पंच सबद सुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिँ बिधि नाना।
करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा। राम गवन मंडप तब कीन्हा।
दसरथ सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे।
समय समय सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला।
नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनइ न कोई।
एहि बिधि राम मंडपहिँ आये। अरघु देइ आसन बैठाये।

छंद—बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुख पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिँ नारि मंगल गावहीं।
ब्रह्मादि सुरबर बिप्रबेष बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोक रघु-कुल-कमल-रबि-छबि सुफल जीवन लेखहीं॥

दो०—नाऊ बारी भाट नट, रामनिछावरि पाई।
मुदित असीसहिँ नाइ सिर, हरषु न हृदय समाई॥१६४॥

मिले जनकु दसरथु अति प्रीती। करि बैदिक लौकिक सब रीती।
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कबि लाजे।

लही न कतहुँ हारि हिय मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी।
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरपि जसु गावन लागे।
जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब तें।
सकल भाँति सम साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू।
देवगिरा सुनि सुंदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माँची।
देत पावँडे अरघु सुहाये। सादर जनकु मंडपहिँ ल्याये।

छंद—मंडप बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरता मुनिमन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहँ आनि सिंहासन धरे।
कुल-इष्ट-सरिस बसिष्ठ पूजे बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहिँ पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परइ कही॥

दो०—बामदेव आदिक रिषय, पूजे मुदित महीस।
दिये दिव्य आसन सबहि, सब सन लही असीस॥ १९५॥

बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईससम भाव न दूजा।
कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य बिभव बहुताई।
पूजे भूपति सकल बराती। समधीसम सादर सब भाँती।
आसन उचित दिये सब काहू। कहउँ कहा मुख एक उछाहू।
सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी।
बिधि हरिहर दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिँ रघु-बीर-प्रभाऊ।
कपट-बिप्र-बर-बेपु बनाये। कौतुक देखहिँ अति सचुपाये।
पूजे जनक देवसम जाने। दिये सुआसन बिनु पहिचाने।

छंद—पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंदकंद बिलोकि दूलह उभय दिसि आनँदमई।
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दये।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुधमन प्रमुदित भये॥

दो०—रामचंद्र-मुख-चंद्र-छबि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर॥ १९६॥

समउ विलोकि वसिष्ठ बोलाये। सादर सतानंद मुनि आये।
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई।
रानी सुनि उपरोहितबानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी।
विप्रवधू कुलवृद्ध बोलाई। करि कुलरीति सुमंगल गाई।
नारिबेष जे सुर-बर बामा। सकल सुभाय सुंदरी स्यामा।
तिन्हहिँ देखि सुख पावहिं नारी। बिनु पहिचानि प्रान तेँ प्यारी।
बार बार सनमानहिं रानी। उमा-रमा-सारद-सम जानीं।
सीय सवाँरि समाज बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लवाई।

छंद—चलि ल्याइ सीतहि सखी सादर सजि सुमंगल भामिनीं।
नवसप्त साजे सुंदरी सब मत्त - कुंजर - गामिनीं।
कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन तालगति बर बाजहीं।

दो०—सोहति बनितावृंद महँ, सहज सुहावनि सीय।
छबि-ललना-गन मध्य जनु, सुखमातिय कमनीय॥ २६७॥

सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघुमति बहुत मनोहरताई।
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूपरासि सब भाँति पुनीता।
सबहि मनहिं मन किये प्रनामा। देखि राम भये पूरनकामा।
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँद जेता।
सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि-असीस-धुनि मंगलमूला।
गान - निसान - कोलाहलु भारी। प्रेम - प्रमोद - मगन नरनारी।
एहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई।
तेहि अवसर कर बिधि व्यवहारू। दुहुं कुलगुरु सब कीन्ह अचारू।

छंद—आचार करि गुरु गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुख पावहीं।
मधुपर्क मंगलद्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महँ चहहिं।
भरे कनककोपर कलस सो तब लिये परिचारक रहहिं।
कुलरीति प्रीति समेत रबि कहिं देत सबु सादर कियो।

एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंहासन दियो ।
सिय - राम - अवलोकनि परसपर प्रेम काहु न लखि परइ।
मन - बुद्धि - बर - बानी - अगोचर प्रगट कवि कैसे करइ ।

दो०—होम समय तनु धरि अनलु, अति सुख आहुति लेहिं ।
विप्रबेष धरि बेद सब, कहि बिबाहबिधि देहिं ॥ १८८ ॥

जनक - पाट - महिषी जग जानी । सीयमातु किमि जाइ बखानी ।
सुजस सुकृत सुख सुंदरताई । सब समेटि बिधि रची बनाई ।
समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाई । सुनत सुआसिनि सादर ल्याई ।
जनक-बाम-दिसि सोह सुनयना । हिमगिरि संग बनी जनु मयना ।
कनककलस मनिकोपर रूरे । सुचि - सुगंध - मंगल-जल-पूरे ।
निज कर मुदित राय अरु रानी । धरे राम के आगे आनी ।
पढ़हिँ बेद मुनि मंगलबानी । गगन सुमन झरि अवसर जानी ।
बर बिलोकि दंपति अनुरागे । पाय पुनीत पखारन लागे ।

छंद—लागे पखारन पायपंकज प्रेम तनु पुलकावली ।
नभ नगर गान-निसान-जय-धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली ।
जे पदसरोज मनोज - अरि - उर - सर सदैव बिराजहीं ।
जे सुकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलिमल भाजहीँ ।
जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई ।
मकरंद जिन्ह को संभुसिर सुचिताअवधि सुर बरनई ।
करि मधुप मुनि मन जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहहिँ ।
ते पद पखारत भाग्यभाजन जनक जय जय सब कहहिँ ॥
बर-कुअँरि-करतल जोरि साखोच्चार दोउ कुलगुरु करहिँ ।
भयो पानि गहन बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरहिँ ।
सुखमूल दूलह देखि दंपति पुलक तनु हुलस्यो हियो ।
करि लोक - बेद - बिधान कन्यादान नृपभूपन कियो ॥
हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई ।

तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई।
क्यों करहिँ बिनय बिदेह कियो बिदेह मूरति सावँरी।
करि होम बिधिवत गाँठि जोरी होन लागी भावँरी॥

दो०—जयधुनि बंदी - बेद - धुनि, मंगलगान निसान।
सुनि हरषहिँ बरषहिँ बिबुध, सुर तरु-सुमन सुजान॥१६४॥

कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं। नयनलाभ सब सादर लेहीं।
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी।
राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं।
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत रामबिवाह अनूपा।
दरसलालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी।
भये मगन सब देखनिहारे। जनकसमान अपान बिसारे।
प्रमुदित मुनिन्ह भावँरी फेरी। नेगसहित सब रीति निबेरी।
राम सीयसिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जात बिधि केहीं।
अरुनपराग जलजु भरि नीके। ससिहि भूप अहि लोभ अमी के।
बहुरि बसिष्ठ दीन्ह अनुसासन। बर दुलहिनि बैठे एक आसन।

छंद—बैठे बरासन राम जनकि मुदित मन दसरथ भये।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत-सुर-तरु-फल नये।
भरि भुवन रहा उछाहु रामबिवाहु भा सबही कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यह मंगल महा।
तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याहसाज सवाँरि कै।
मांडवी स्रुतिकीर्त्ति, उर्मिला कुअँरि लई हँकारि कै।
कुल-केतु-कन्या प्रथम जो गुन - सील -सुख - सोभा - मई।
सब रीति-प्रीति-समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥
जानकी - लघु - भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लषनहि सकल बिधि सनमानि कै।
जेहि नाम स्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुनआगरी।

सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥
अनुरूप बर दुलहिनि परसपर लखि सकुचि हिय हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुरगन बरषहीं।
सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥

दो०—मुदित अवधपति सकल सुत, बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाये महि-पाल-मनि, कियन्ह सहित फल चारि॥१७०॥

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहि करनी।
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनकमनि मंडप पूरी।
कंबल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहुमोल न थोरे।
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा सी।
बस्तु अनेक करिय किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा।
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सब सुख माने।
दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासहिं आवा।
तब कर जोरि जनक मृदुबानी। बोले सब बरात सनमानी।

छंद—सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महा मुनिबृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै।
सिरनाइ देव मनाइ सब सन कहत करसंपुट किये।
सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जलअंजलि दिये॥
कर जोरि जनक बहोरि बंधुसमेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों।
सनबंध राजन रावरे हम बड़े अब सब बिधि भये।
यह राज साज समेत सेवक जानिबी बिनु गथ लये॥
ए दारिका परिचारिका करि पालबी करुनामई।
अपराध छमिबो बोलि पठये बहुत हौं ढीठ्यो कई।
पुनि भानु-कुल-भूषन सकल-सनमान-निधि समधी किये॥

कहि जात नहिं बिनती परसपर प्रेम परिपूरन हिये॥
बृंदारकागन सुमन बरषहिं राउ जनवासहिं चले।
दुंदुभी जयधुनि वेदधुनि नभ नगर कौतूहल भले।
तब सखी मंगलगान करत मुनीस आयसु पाय कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

दो०—पुनि पुनि रामहिं चितव सिय, सकुचति मन सकुचै न।
हरत मनोहर-मीन-छबि, प्रेम पियासे नैन॥ १७१॥

स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि-मनोज-लजावन।
जावकजुत पदकमल सुहाये। मुनि-मन-मधुप रहत जिन्ह छाये।
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बाल-रवि-दामिनि-जोती।
कल किंकिन कटिसूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर।
पीत जनेउ महाछबि देई। करमुद्रिका चोरि चित लेई।
सोहत ब्याहसाज सब साजे। उर आयत भूषन उर राजे।
पियर उपरना काँखा सोती। दुहुं आँचरन्हि लगे मनि मोती।
नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्जनिधाना।
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भालतिलकु रुचिरता निवासा।
सोहत मौर मनोहर माथे। मंगलमय मुकुतामनि गाथे।

छंद—गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुरनारि सुरसुंदरी बरहिं बिलोकि सब तृन तोरहीं।
मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजस सुनावहीं॥
कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै।
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन सारद कहहिं।
रनिवासु हास-बिलास-रस-बस जनम को फल सब लहहिं॥
निज-पानि-मनि महुँ देखि प्रतिमूरति सु-रूप-निधान की।

चालति न भुजवल्ली विलोकनि-विरह-भय-बस जानकी।
कौतुक विनोद प्रमोद प्रेम न जाइ कहि जानहिं अली।
बर कुअँरि सुंदर सकल सखी लिवाइ जनवासहिं चली।
तेहि समय सुनिय असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँद महा।
चिरजिअहु जोरी चारु चार्यो मुदित मन सबही कहा।
जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरपि बरपि प्रसून निज-निज-लोकजयजयजय भनी।

दो०—सहित वधूटिन्ह कुअँर सब, तब आये पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास॥ १७२॥

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठये जनक बोलाइ बराती।
परत पाँवडे बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन किय भूपा।
सादर सब के पाँय पखारे। जथाजोग पीढ़न बैठारे।
धोये जनक अवध-पति-चरना। सील सनेहु जाइ नहिं बरना।
बहुरि राम-पद-पंकज धोये। जे हर हृदयकमल महँ गोये।
तीनिउ भाइ रामसम जानी। धोये चरन जनक निज पानी।
आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे।
सादर, लगे परन पनवारे। कनककील मनिपान सवाँरे।

दो०—सूपोदन सुरभी सरपि, सुंदर स्वाद पुनीत।
छन महँ सब के परुसि गे, चतुर सुआर विनीत॥ १७३॥

पंचकवलि करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे।
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधासरिस नहिं जाहिं बखाने।
परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन विविध नाम को जाना।
चारि भाँति भोजन विधि गाई। एक एक रस बरनि न जाई।
छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती।
जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी। लेइ लेइ नाम पुरुप अरु नारी।
समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा।

एहि विधि सबही भोजन कीन्हा । आदरसहित आचमन दीन्हा ।
दो०—देइ पान पूजे जनक, दसरथ सहित समाज ।
जनवासे गवने मुदित, सकल-भूप-सिरताज ॥ १७४ ॥

नित नूतन मंगल पुर माहीं । निमिष सरिस दिन जामिन जाहीं ।
जनक सनेह सीलु करतूती । नृपु सब भाँति सराह विभूती ।
दिन उठि बिदा अवधपति माँगा । राखहिँ जनक सहित अनुरागा ।
नित नूतन आदर अधिकाई । दिनप्रति सहस भाँति पहुनाई ।
नित नव नगर अनंद उछाहू । दसरथगवन सुहाइ न काहू ।
वहुत दिवस बीते एहि भाँती । जनु सनेहरजु बँधे बराती ।
कौसिक सतानंद तब जाई । कहा विदेह नृपहि समुझाई ।
अब दसरथ कहँ आयसु देहू । जद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू ।
भलेहि नाथ कहि सचिव बोलाये । कहि जय जीव सीस तिन्ह नाये ।
दो०—अवधनाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ ।
भये प्रेमवस सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ ॥ १७५ ॥

पुरवासी सुनि चलिहि बराता । पूछत विकल परसपर बाता ।
सत्य गवन सुनि सब बिलखाने । मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने ।
जहँ जहँ आवत बसे बराती । तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती ।
बिबिध भाँति मेवा पकवाना । भोजनसाज न जाइ बखाना ।
भरि भरि बसह अपार कहारा । पठये जनक अनेक सुआरा ।
तुरग लाख रथ सहस पचीसा । सकल सवाँरे नख अरु सीसा ।
मत्त सहस दस सिंधुर साजे । जिन्हहिँ देखि दिसिकुंजर लाजे ।
कनक बसन मनि भरि भरि जाना । महिषी धेनु बस्तु बिधि नाना ।
दो०—दाइज अमित न सकिअ कहि, दीन्ह बिदेह बहोरि ।
जो अवलोकत लोकपति, लोक संपदा थोरि ॥ १७६ ॥
सब समाजु एहि भाँति बनाई । जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ।
चलिहि बरात सुनत सब रानी । बिकल मीनगन जनु लघु पानी ।

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं । देइ असीस सिखावन देहीं ।
होयेहु संतत पियहि पियारी । चिर अहिवात असीस हमारी ।
सासु-ससुर-गुरु-सेवा करेहू । पतिरुख लखि आयसु अनुसरेहू ।
अति-सनेह-बस सखी सयानी । नारिधरमु सिखवहिँ मृदुबानी ।
सादर सकल कुअँरि समुझाई । रानिन्ह बार बार उर लाई ।
बहुरि बहुरि भेटहिँ महतारी । कहहिँ बिरंचि रची कत नारी ।

दो०—तेहि अवसर भाइन्ह सहित, राम भानु - कुल - केतु ।
चले जनकमंदिर मुदित, बिदा करावन हेतु ॥ १७७ ॥
रूपसिंधु सब बंधु लखि हरषि उठेउ रनिवासु ।
करहिँ निछावरि आरती, महामुदितमन सासु ॥ १७८ ॥

देखि रामछबि अति अनुरागीं । प्रेमबिबस पुनि पुनि पद लागीं ।
रही न लाज प्रीति उर छाई । सहज सनेह बरनि किमि जाई ।
भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाये । छरस असन-अतिहेतु जेंवाये ।
बोले रामु सुअवसर जानी । सील-सनेह-सकुच-मय बानी ।
राउ अवधपुर चहत सिधाये । बिदा होन हम इहाँ पठाये ।
मातु मुदित मन आयसु देहू । बालक जानि करब नित नेहू ।
सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू । बोलि न सकहिँ प्रेमबस सासू ।
हृदय लगाइ कुअँरि सब लीन्ही । पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही ।

छंद-करि बिनय सिय रामहिँ समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहइ ।
बलि जाउँ तात सुजान तुम कहँ बिदित गति सब की अहइ ।
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी ।
तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी ।

सो०—तुम परिपूरनकाम, जान सिरोमनि भाव प्रिय ।
जन-गुन-गाहक राम, दोषदलन करुनायतन ॥ १७९ ॥

अस कहि रही चरन गहि रानी । प्रेमपंक जनु गिरा समानी ।
सुनि सनेहसानी बर बानी । बहु बिधि राम सासु सनमानी ।

राम बिदा माँगा कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी।
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई।
मंजु-मधुर-मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी।
पुनि धीरज धरि कुअँरि हँकारी। बार बार भेटहिं महतारी।
पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी।
पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई।

दो०—प्रेमबिबस परिवार सब, जानि सुलगन नरेस।
कुअँरि चढ़ाई पालकिन्ह, सुमिरे सिद्ध गनेस ॥ १८० ॥

बहु बिधि भूप सुता समुझाई। नारिधरम कुलरीति सिखाई।
दासी दास दिये बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे।
सीय चलत ब्याकुल पुरबासी। होहिं सगुन सुभ मंगलरासी।
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा।
समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे।
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे।
चरन-सरोज-धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा।
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना। मंगलमूल सगुन भये नाना।

दो०—बीच बीच बर बास करि, मगलोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत ॥ १८१ ॥

हने निसान पनव बर बाजे। भेरि-संख-धुनि हय गय गाजे।
झाँझि भेरि डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई।
समय जानि गुरु आयसु दीन्हा। पुर प्रवेस रघु-कुल-मनि कीन्हा।
सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा।
मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं जस तिहुँ लोक उजागर।
बिपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे।
पुरबासिन्ह तब राउ जोहारे। देखत रामहिं भये सुखारे।
करहिं निछावर मनि गन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा।

आरति करहिं मुदित पुरनारी । हरषहिं निरखि कुअँर वर चारी ।
सिबिका सुभग उहार उघारी । देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी ।

दो०—एहि विधि सबही देत सुख, आये राजदुआर ।
मुदित मातु परिछन करहिं, बधुन्ह समेत कुमार ॥ १८२ ॥

करहिं आरती बारहिं बारा । प्रेम प्रमोद कहइ को पारा ।
भूषन मनि पट नाना जाती । करहिं निछावरि अगनित भाँती ।
बधुन्ह समेत देखि सुत चारी । परमानंदमगन महतारी ।
पुनि पुनि सीय-राम-छवि देखी । मुदित सुफल जग जीवन लेखी ।
सखी सीयमुख पुनि पुनि चाही । गान करहिं निज सुकृत सराही ।
बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा । नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा ।
देखि मनोहर चारिउ जोरी । सारद उपमा सकल ढँढोरी ।
देत न बनहिं निपट लघु लागी । एकटक रही रूपअनुरागी ।

दो०—निगमनीति कुलरीति करि, अरघ पावँड़े देत ।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब, चली लेवाइ निकेत ॥१८३॥
बधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीस ।
पुनि पुनि बंदत गुरुचरन, देत असीस मुनीस ॥१८४॥
मंगल मोद उछाह नित, जाहिं दिवस एहि भाँति ।
उमगी अवध अनंद भरि, अधिक अधिक अधिकाति ॥१८५॥

अयोध्या कांड।

दो०—श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज, निज-मन-मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जसु, जो दायकु फल चारि॥ १॥

जब ते राम व्याहि घर आये। नित नवमंगल मोद बधाये।
भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुखवारी।
रिधिसिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई।
मनिगन पुर-नर-नारि-सुजाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती।
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती।
सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद-मुख-चंदु निहारी।
मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली।
राम-रूप-गुन-सीलु-सुभाऊ। प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ।

दो०—सब के उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुबराज पदु, रामहिं देउ नरेसु॥ २॥

एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराज बिराजा।
सकल-सुकृत-मूरति नरनाहू। रामसुजसु सुनि अतिहि उछाहू।
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीतिरुख राखे।
त्रिभुवन तीन काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं।
मंगलमूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिय थोर सबु तासू।
राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा।
स्रवन समीप भये सितकेसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा।
नृप जुबराज राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू।

दो०—यह बिचारु उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरुहि सुनायेउ जाइ॥ ३॥

कहइ भुआल सुनिय मुनि नायक । भये राम सब विधि सब लायक ।
सेवक सचिव सकल पुरवासी । जे हमरे अरि मित्र उदासी ।
सबहिँ रामु प्रिय जेहि विधि मोही । प्रभु असीस जनु तनुधरि सोही ।
बिप्र सहित परिवार गोसाईं । करहिँ छोहु सब रउरहि नाईं ।
जे गुरु-चरन-रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल विभव बस करहीं ।
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजे । सबु पायेउँ रज पावनि पूजे ।
अब अभिलाषु एकु मन मोरे । पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे ।
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू । कहेउ नरेसु रजायसु देहू ।

दो०—राजन राउर नामु जसु, सब अभिमतदातार ।
फलअनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार ॥ ४ ॥

सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी । बोलेउ राउ रहसि मृदुबानी ।
नाथ रामु करियहि जुबराजू । कहिय कृपा करि करिय समाजू ।
मोहि अछत यहु होइ उछाहू । लहहिँ लोग सब लोचन लाहू ।
प्रभुप्रसाद सिव सबइ निबाहीं । यह लालसा एक मन माहीं ।
पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ । जेहि न होइ पाछे पछिताऊ ।
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाये । मंगल-मोद-मूल मन भाये ।
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं । जासु भजन बिन जरनि न जाहीं ।
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । रामु पुनीत प्रेम-अनुगामी ।

दो०—बेगि बिलँबु न करिय नृप, साजिय सबुइ समाजु ।
सुदिनु सुमंगलु तबहि जब, रामु होहिं जुबराजु ॥ ५ ॥

मुदित महीपति मंदिर आये । सेवक सचिव सुमंत्र बोलाये ।
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाये । भूप सुमंगल बचन सुनाये ।
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू । रामहिं राय देहु जुबराजू ।
जौं पंचहि मत लागइ नीका । करहु हरषि हिय रामहिं टीका ।
बेद बिदित कहि सकल बिधाना । कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना ।
सफल रसाल पूंगफल केरा । रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ॥

रचहु मंजु मनि चौकइ चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा। सब विधि करहु भूमि-सुर-सेवा॥

दो०—एहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि विधु बढ़त जनु, बारिधि बीचि बिलासु॥ ६॥
राम-राज-अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नरनारि।
लगे सुमंगल सजन सब, विधि अनुकूल विचारि॥ ७॥

बाजहिं बाजने विविध विधाना। पुरप्रमोद नहिं जाइ बखाना॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहु बेगि नयन फल पावहिं॥
हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परसपर लोग लोगाई॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥
कनकसिंहासन सीयसमेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली॥
तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चंदिनि राति न भावा॥
सारद बोलि विनय सुर करहीं। बारहिं बार पाँय लै परहीं॥

दो०—विपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिय सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुरकाजु॥ ८॥
नामु मंथरा मंदमति, चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥ ९॥

दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। रामतिलकु सुनि भा उरदाहू॥
करइ विचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि विधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती॥
भरतमातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
उतरु देइ नहिं लेइ उसासू। नारिचरित करि ढारइ आँसू॥
हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे। दीन्ह लपन सिख अस मन मोरे॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि॥

दो०—सभय रानि कह कहसि किन, कुसल राम महिपाल।
लषनु भरतु रिपुदमनु सुनि, भा कुबरी उर सालु ॥ १० ॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई।
रामहिं छाड़ि कुसल केहि आजू। जिन्हहिं जनेसु देइ जुवराजू।
भयउ कौसिलहि बिधि अतिदाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन।
देखहु कस न जाय सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा।
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारे। जानति हहु बस नाहु हमारे।
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई।
सुनि प्रियवचन मलिनमनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी।
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी।

दो०—काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिशेषि पुनि चेरि कहि, भरतमातु मुसुकानि ॥ ११ ॥

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहु तो पर कोप न मोही।
सुदिनु सु-मंगल-दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई।
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिन-कर-कुल-रीति सुहाई।
रामतिलकु जौं साचेहु काली। देउँ माँग मनभावत आली।
कौसल्यासम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाव पियारी।
मो पर करहिं सनेह बिसेखी। मैं करि प्रीति परीछा देखी।
जौ बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहिं रामसिय पूत पतोहू।
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरे।

दो०—भरतसपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमय करसि, कारन मोहि सुनाउ ॥ १२ ॥

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।
फोरइ जोग कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहिं लागा।
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई।
हमहुँ कहब अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती।

करि कुरूप विधि परवस कीन्हा। ववा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा॥
कोउ नृप होय हमहिं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होव कि रानी॥
जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाय तुम्हारा॥
तातें कछुक बात अनुसारी। छमिय देवि वड़ि चूक हमारी॥

दो०—गूढ़-कपट-प्रिय-बचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि।
सुरमाया बस वैरिनिहि, सुहृद जानि पतिआनि॥ १३॥

सादर पुनि पुनि पूछति ओही। सवरीगान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फावी॥
तुम्ह पूछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तव बोली॥
प्रिय सियरामु कहा तुम्ह रानी। रामहिं तुम्ह प्रिय सो फुर बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते॥
भानु कमल-कुल-पोषनि-हारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा॥
जर तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाय बर बारी॥

दो०—तुम्हहिं न सोचु सोहाग बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुहं मीठ नृप, राउर सरल सुभाउ॥ १४॥

चतुर गँभीर राममहतारी। वीचु पाइ निज बात सवाँरी॥
पठये भरतु भूप ननिअउरे। राम-मात-मत जानव रउरे॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके। गरवित भरतमातु बल पी के॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई॥
राजहिं तुम्ह पर प्रेम बिसेखी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥
रचि प्रपंच भूपहिं अपनाई। राम-तिलक-हित लगन धराई॥
यह कुल उचित राम कहुँ टीका। सवहि सुहाइ मोहि सुठि नीका॥
आगिल बात समुझि डर मोही। देउ दैव फिरि सो फलु ओही॥

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपटप्रबोधु।
कहेसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु॥ १५॥

साधोवस प्रतीति उर आई। पूछु रानि पुनि सपथ देवाई।
का पूछहु तुम्ह अवहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना।
भयऊ पाखु दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू।
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे। सत्य कहे नहिं दोषु हमारे।
जौ असत्य कछु कहव वनाई। तौ विधि देइहि हमहिं सजाई।
रामहिं तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ विपति वीजु विधि वयऊ।
रेख खँचाइ कहउँ वल भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी।
जौं सुतसहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई।

दो०—कद्रू विनतहि दीन्ह दुख, तुम्हहिं कौसिला देव।
भरतु वंदिगृह सेइहहिं, लपनु राम के नेव॥ १६॥

कैकयसुता सुनत कटुवानी। कहि न सकइ कछु सहमिसुखानी।
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुवरी दसन जीभ तव चाँपी।
कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रवोधेसि रानी।
कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवइ फिरि उकट कुकाठू।
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। वकिहि सराहइ मानि मराली।
सुनु मंथरा वात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी।
दिन प्रति देखहुँ राति कुसपने। कहउ न तोहि मोहवस अपने।
काह करउ सखि सूध सुभाऊ। दाहिन वाम न जानउँ काऊ।

दो०—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि वार मोहि, दैव दुसह दुख दीन्ह॥ १७॥

नैहर जनमु भरव वरु जाई। जियत न करव सवति-सेवकाई।
अरिवस दैव जियावत जाही। मरनु नीक तेहि जीव न चाही।
दीन वचन कह वहु विधि रानी। सुनि कुवरी तियमाया ठानी।
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सोहागु तुम्ह कहँ दिन दूना।
जेइ राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यह फलु परिपाका।
जव तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न वासर नींद न जामिनि।

पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ। हैं तुम्हरी सेवाबस राऊ॥

दो०—परउँ कूप तव वचन पर, सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़, कस न करब हित लागि॥१८॥

कुबरी करी कुबलि कैकेई। कपटछुरी उरपाहन टेई॥
लखइ न रानि निकट दुख कैसे। चरइ हरित त्रिन बलिपसु जैसे॥
सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ बरदान भूप सन थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहिं बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥
भूपति रामसपथ जब करई। तब माँगहु जेहि बचनु न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी ते॥

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु।
काजु सवाँरेहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु॥ १९॥

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कर भइसि अधारा॥
जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करउँ तोहि चखपूतरि आली॥
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकेई॥
बिपति बीजु बरषारितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकेई केरी॥
पाइ कपटजलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुखफल परिनामा॥
कोपसमाजु साजि सब सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई॥

दो०—प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहिं सुमंगल चार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूपदरबार॥ २०॥
साँझ समय सानंद नृप, गयउ कैकई गेह।
गवनु निठुरता निकट किया, जनु धरि देह सनेह॥ २१॥

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ । भयबस अगहुड परइ न पाऊ ।
सुरपति बसइ बाँहबल जाके । नरपति सकल रहहिं रुख ताके ।
सो सुनि तियरिस गयउ सुखाई । देखहु कामप्रताप बड़ाई ।
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे । ते रतिनाथ सुमनसर मारे ।
सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ । देखि दसा दुख दारुन भयऊ ।
भूमिसयन पट मोट पुराना । दिये डारि तन भूषन नाना ।
कुमतिहि कसि कुबेसता फाबी । अन-अहिवातु-सूच जनु भावी ।
जाइ निकट नृप कह मृदुबानी । प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ।

सो०—बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि ।
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर ॥२२॥

अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा ।
कहु केहि रंकहि करउं नरेसू । कहु केहि नृपहिं निकासउँ देसू ।
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी । काह कीट बपुरे नरनारी ।
जानसि मोर सुभाउ बरोरू । मन तव आनन चंद चकोरू ।
प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरे । परिजन प्रजा सकल बस तोरे ।
जौ कछु कहउं कपट करि तोही । भामिनि राम-सपथ-सत मोही ।
बिहँसि माँगु मनभावति बाता । भूषन सजहिं मनोहर गाता ।
घरी कुघरी समुझि जिय देखू । बेगि प्रिया परिहरहि कुबेखू ।

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहंसि उठी मतिमंद ।
भूषन सजति बिलोकि मृग, मनहुं किरातिनि-फंद ॥२३॥

पुनि कह राउ सुहृद जिय जानी । प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ।
भामिनि भयउ तोर मन भावा । घर घर नगर अनंदबधावा ।
रामहिं देउं कालि, जुबराजू । सजहि सुलोचनि, मंगलसाजू ।
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू । जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ।
ऐसिउ पीर बिहँसि तेइ गोई । चोरनारि जिमि प्रगट न रोई ।
लखी न भूप कपट चतुराई । कोटि-कुटिल-मनि गुरू पढ़ाई ।

जद्यपि नीतिनिपुन नरनाहू। नारिचरित जलनिधि अवगाहू।
कपटसनेह बढ़ाई बहोरी। बोली बिहँसि नयन मह मोरी।
दो०—माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥२४॥

जानेउ मरम राउ हँसि कहई। तुम्हहिं कोहाब परम प्रिय अहई।
थाती राखि न मांगेहु काऊ। बिसरि गयउ मोहिं भोर सुभाऊ।
झूठेहु हमहिं दोस जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि किन लेहू।
रघु-कुल-रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई।
नहिं असत्यसम पातकपुंजा। गिरिसम होहिं कि कोटिक गुंजा।
सत्यमूल सब सुकृत सुहाये। वेद पुरान विदित मुनि गाये।
तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत-सनेह-अवधि रघुराई।
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत-कुबिहंग-कुलह जनु खोली।
दो०—भूप मनोरथ सुभग बन, सुख सुबिहंग-समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति, बचन भयंकर बाजु ॥२५॥

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका।
मागऊँ दूसर बर करजोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।
तापसवेष विशेषि उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी।
सुनि मृदुबचन भूपहिय सोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू।
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा।
बिवरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू।
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन।
मोर मनोरथ सुर-तरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला।
अवध उजार कीन्ह कैकेई। दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई।
दो०—कवने अवसर का भयउ, गयउ नारिबिस्वास।
जोग-सिद्धि-फल-समय जिमि, जतिहि अविद्यानास ॥ २६ ॥
एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मनु माँखा।

भरत कि राउर पूत न होही। आनेहु मोल वेसाहि कि मोही।
जो सुनि सर अस लागु तुम्हारे। काहे न वोलहु वचनु सँभारे।
देहु उतर अरु कहहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं।
देन कहेहु अव जनि वरु देहू। तजहु सत्य जग अपजस लेहू।
सत्य सराहि करेहु वरु देना। जानहु लेइहि माँगि चवेना।
सिवि दधीचि वलि जो कछु भाषा। तनुधनु तजेउ वचनपन राखा।
अति-कटु-वचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई।

दो०—धरम-धुरंधर धीर धरि, नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्हिं उसास असि, मारेसि मोहि कुठाय॥२७॥

आगे दीखि जरति रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी।
मूठ कुवुद्धिं धार निठुराई। धरी कूवरी सान वनाई।
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा।
वोलेउ राउ कठिन करि छाती। वानी सविनय तासु सोहाती।
प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीत प्रीति करि हाँती।
मोरे भरत राम दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि शंकर साखी।
अवसि दूत मैं पठउव प्राता। ऐहहिं वेगि सुनत दोउ भ्राता।
सुदिन सोधि सव साजु सजाई। देउँ भरत कहँ राजु वजाई।

दो०—लोभु न रामहिँ राजु कर, वहुत भरत पर प्रीति।
मैं वड़ छोट विचारि जिय, करत रहेउँ नृपनीति॥२८॥

राम-सपथ-सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ।
मैं सव कीन्ह तोहि विनु पूछे। तेहि ते परेउ मनोरथ छूछे।
रिस परिहरु अव मंगल साजू। कछु दिन गये भरत जुवराजू।
एकहि वात मोहि दुख लागा। वर दूसर असमंजस माँगा।
अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहु साँचा।
कहु तजि रोष रामअपराधू। सब कोउ कहइ रामु सुठि साधू।
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अव सुनि मोहि भयउ संदेहू।

जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला । सो किमि करिहि मातुप्रतिकूला ।

दो०—प्रिया हास रिस परिहरहि, माँगु विचारि विवेकु ।
जेहि देखउँ अब नयन भरि, भरत राज अभिषेकु ॥ २९ ॥

जिअइ मीन वरु वारिविहीना । मनि-विनु फनिक जिअइ दुखदीना ।
कहउँ सुभाव न छल मन माहीं । जीवन मोर राम विनु नाहीं ।
समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना । जीवन राम-दरस-आधीना ।
सुनि मृदु वचन कुमति अत जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ।
कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ।
देहु कि लेहु अजस करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सुहाहीं ।
राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राममातु भलि सब पहिचाने ।
जस कौसिला मोर भल ताका । तस फल उन्हहिं देउँ करि साका ।

दो०—होत प्रात मुनिवेष धरि, जौं न राम वन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिय मन माहिं ॥ ३० ॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरंगनी बाढ़ी ।
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ।
दोउ वर कूल कठिनहठ धारा । भवँर कूबरी-बचन-प्रचारा ।
ढाहत भूपरूप तरुमूला । चली विपतिवारिधि अनुकूला ।
लखी नरेस बात सब साँची । तियमिसु मीच सीस पर नाँची ।
गहि पद विनय कीन्ह बैठारी । जनि दिन-कर-कुल होसि कुठारी ।
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही । रामविरह जनि मारसि मोही ।
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती । नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती ।

दो०—देखी व्याधि असाधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ ।
कहत परम आरत वचन, राम राम रघुनाथ ॥ ३१ ॥

व्याकुल राव सिथिल सब गाता । करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता ।
कंठ सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीन दीन विनु पानी ।
पुनि कह कटु कठोर कैकेई । मनहुँ घाय महुँ माहुर देई ।

जौं अंतहु अस करतब रहेऊ। माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ।
दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला।
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि पेम कुसल रौताई।
छाड़हु बचन कि धीरज धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू।
तनु तिय तनय धाम धनु धरनी। सत्यसंध कहँ तृनसम बरनी।

दो०—मरमबचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोष न तोर।
लागेउ तोहि पिचास जिमि, काल कहावत मोर॥ ३२॥

चहत न भरत भूपतहि भोरे। बिधिबस कुमति बसी जिय तोरे।
सो सब मोर पापपरिनामू। भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू।
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुनधाम राम प्रभुताई।
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुं पुर राम बड़ाई।
तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ।
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचनओट बैठु मुँह गोई।
जब लगि जिअउँ कहउँ करजोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी।
फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारुहि लागी।

दो०—परेउ राउ कहि कोटिबिधि, काहे करसि निदानु।
कपटसयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानु॥ ३३॥

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू।
हृदय मनाव भोरु जनि होई। रामहिं जाइ कहइ जनि कोई।
उदय करहु जनि रवि रघुकुलगुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर।
भूपप्रीति कैकइकठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई।
बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना-बेनु-संख-धुनि द्वारा।
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक।
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू। रामदरस लालसा उछाहू।

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदित रवि देखि।
जागे अजहुं न अवधपति, कारन कवन बिसेखि॥ ३४॥

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहिँ बड़ अचरजु लागा।
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिय काज रजायसु पाई।
गये सुमंत्र तब राउर पाहीं। देखि भयावन जात डेराहीं।
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ विपति-विषाद-बसेरा।
पूछे कोउ न ऊतरु देई। गये जेहि भवन भूप कैकेई।
कहि जय जीव बैठ सिर नाई। देखि भूपगति गयउ सुखाई।
सोच विकल विवरन महि परेऊ। मानहुँ कमलमूल परिहरेऊ।
सचिव सभीत सकइ नहिं पूछी। बोली असुभभरी सुभछूछी।

दो०—परी न राजहि नींद निसि, हेतु जान जगदीस।
राम राम रटि भोरु किय, कहइ न मरमु महीस॥ ३५॥

आनहु रामहिँ वेगि बोलाई। समाचार तब पूछेहु आई।
चलेउ सुमंत्र रायरुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी।
सोच विकल मग परइ न पाऊ। रामहिँ बोलि कहिहिँ का राऊ।
उर धरि धीरज गयउ दुआरे। पूछहिँ सकल देखि मनमारे।
समाधान करि सो सबही का। गयउ जहाँ दिन-कर-कुल-टीका।
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदर कीन्ह पितासम लेखा।
निरखि वदन कहि भूपरजाई। रघु-कुल-दीपहिँ चलेउ लेवाई।
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं।

दो०—जाइ देखि रघु-बंस-मनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहु वृद्ध गजराजु॥ ३६॥

सूखहिँ अधर जरहिं सब अंगू। मनहुं दीन मनिहीन भुअंगू।
सरुख समीप देखि कैकेई। मानहुँ मीच घरी गनि लेई।
करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ।
तदपि धीर धरि समउ विचारी। पूछी मधुर वचन महतारी।
मोहि कहु मात तात-दुख-कारन। करिय जतन जेहि होइ निवारन।
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुम्ह पर बहुत सनेहू।

देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहिं सुहाना।
सो सुनि भयउ भूपउर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू।

दो०—सुतसनेह इत वचन उत, संकट परेउ नरेसु।
सकहु न आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु॥ ३७॥

मन मुसुकाइ भानु-कुल-भानू। राम सहज - आनन्द - निधानू।
बोले वचन विगत सब दूपन। मृदु मंजुल जनु बागविभूपन।
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु-मातु-वचन-अनुरागी।
तनय मातु-पितु - तोपनि - हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।
भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। विधि सब विधि मोहिं सनमुख आजू।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़ समाजा।
सेवहिँ अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहि विपु माँगी।
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखि विचारि मातु मन माहीं।

दो०—मुनि-गन-मिलनु विसेपि वन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर॥ ३८॥
गइ मुरुछा रामहिँ सुमिर, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि, विनय समयसम कीन्ह॥ ३९॥

अवनिप अकनि राम पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे।
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे।
लिये सनेह विकल उर लाई। गई मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई।
रामहिँ चितय रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारिप्रवाहू।
सोकविवस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिँ बारा।
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी।
देस काल अवसर अनुसारी। बोले वचन विनीत विचारी।
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई।
अति-लघु-बात लागि दुख पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा।
देखि गोसाइहिँ पूछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भये सीतल गाता।

दो०—मंगलसमय सनेहवस, सोच परिहरिय तात ।
आयसु देइय हरषि हिय, कहि पुलके प्रभुगात ॥ ४० ॥

धन्य जनम जगतीतल तासू । पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू ।
चारि पदारथ करतल ता के । प्रिय पितुमातु प्रानसम जा के ।
आयसु पालि जनमफल पाई । ऐहउँ वेगिहि होउ रजाई ।
विदा मातु सन आवउँ माँगी । चलिहउँ वनहिँ वहुरि पग लागी ।
अस कहि रामु गवन तव कीन्हा । भूप सोकवस उतरु न दीन्हा ।
नगर व्यापि गई वात सुतीछी । छुअत चढ़ी जनु सव तन वीछी ।
विपुल वियोग प्रजा अकुलानी । जनु जल-चर-गन सूखत पानी ।
अति-विषाद-वस लोग लोगाई । गये मातु पहिं राम गोसाई ।

दो०—नवगयंद रघुवीरमन, राजु अलानसमान ।
छूट जानि वनगवन सुनि, उर आनँद अधिकान ॥ ४१ ॥

रघु-कुल-तिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातुपद नायउ माथा ।
दीन्ह असीस लाइ उर लीन्हे । भूपनवसन निछावरि कीन्हे ।
वार वार मुख चूँवति माता । नयन नेहजलु पुलकित गाता ।
गोद राखि पुनि हृदय लगाये । स्रवत प्रेमरस पयद सुहाये ।
धरमधुरीन धरमगति जानी । कहेउ मातु सन अति-मृदु-वानी ।
पिता दीन्ह मोहि काननराजू । जहँ सव भांति मोर वड़ काजू ।
आयसु देहि मुदितमन माता । जेहि मुदमंगल कानन जाता ।
जनि सनेह वस डरपसि भोरे । आनँद अंव अनुग्रह तोरे ।

दो०—वरप चारि दस विपिन वसि, करि पितु-वचन प्रमान ।
आइ पाय पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान ॥ ४२ ॥

वचन विनीत मधुर रघुवर के । सरसम लगे मातुउर करके ।
सहमि सूखि सुनि सीतलवानी । जिमि जवास परे पावस पानी ।
कहि न जाय कछु हृदय विषादू । मनहुं मृगी सुनि केहरिनादू ।
नयन सजल तन थरथर काँपी । माँजहि खाइ मीन जनु माँपी ।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू।
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरम जाइ अरु बंधुबिरोधू।
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट-सोच बिबस भइ रानी।
बहुरि समुझि तियधरम सयानी। राम भरत दोउ सुत सम जानी।
सरलसुभाउ राममहतारी। बोली बचन धीर धरि भारी।
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितुआयसु सब धरम क टीका।

दो०—समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद-कमल-जुग, बंदि बैठि सिरु नाइ॥ ४३॥

दीन्हि असीस सासु मृदुबानी। अतिसुकुमारि देखि अकुलानी।
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूपरासि पति-प्रेम-पुनीता।
चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतब कछु जाइ न जाना।
चारु चरननख लेखति धरनी। नूपुरमुखर मधुर कबि बरनी।
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं।
मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राममहतारी।
तात सुनहु सिय अतिसुकुमारी। सासु-ससुर-परिजनहि पियारी।

दो०—पिता जनक भूपालमनि, ससुर भानु-कुल-भानु।
पति रबि-कुल-कैरव-बिपिन, बिधु गुन-रूप निधानु॥ ४४॥

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूपरासि गुन सील सुहाई।
नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखउँ प्रान जानकिहिं लाई।
कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेहसलिल प्रतिपाली।
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा।
पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा।
जिवनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीपबाति नहिं टारन कहऊँ।
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा।
चंद-किरिन-रसि-रसिक चकोरी। रबिरुख नयन सकइ किमि जोरी।

दो०—करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु वन भूरि।
विषवाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि मूरि॥ ४५॥

वनहित कोल किरात किसोरी। रची विरंचि विषय-सुख-भोरी।
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ।
कै तापसतिय काननजोगू। जिन्ह तपहेतु तजा सब भोगू।
सिय वन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती।
सुर-सर-सुभग वनज-वन-चारी। डावर जोग कि हंसकुमारी।
अस विचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई।
जौं सिय भवन रहइ कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा।
सुनि रघुवीर मातु-प्रिय-वानी। सील सनेह सुधा जनु सानी।

दो०—कहि प्रिय वचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रवोधन जानकिहि, प्रगटि विपिन-गुन-दोष॥ ४६॥

मातुसमीप कहत सकुचाहीं। बोले समय समुझि मन माहीं।
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू।
आपन मोर नीक जौं चहहू। वचन हमार मानि गृह रहहू।
आयसु मोरि सासुसेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई।
एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेमविकल मतिभोरी।
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझायेहु मृदुवानी।
कहउँ सुभाय सपथ सत मोहीं। सुमुखि मातुहित राखउँ तोहीं।

दो०—गुरु-स्रुति-संमत धरमफल, पाइय विनहिं कलेसु।
हठवस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेसु॥ ४७॥

मैं पुनि करि प्रमान पितुवानी। वेगि फिरव सुनु सुमुखि सयानी।
दिवस जात नहिं लागिहि वारा। सुंदरि सिखवन सुनहु हमारा।
जौं हठ करहु प्रेमवस वामा। तौ तुम्ह दुख पाउव परिनामा।
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम वारि वयारी।

कुस कंटक मग काँकर नाना । चलव पयादेहिं विनु पदत्राना ।
चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ।
कंदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ।
भालु बाघ वृक केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरज भागा ।

दो०—भूमिसयन वलकलवसन, असन कंद-फल-मूल ।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल ॥४८॥

नर अहार रजनीचर चरहीं । कपटवेष विधि कोटिक करहीं ।
लागइ अति पहार कर पानी । विपिन विपति नहिं जाइ बखानी ।
व्याल कराल विहँग बन घोरा । निसि-चर-निकर नारि-नर-चोरा ।
डरपहिं धीर गहन सुधि आये । मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये ।
हँसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू । सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू ।
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवनपयोधि मराली ।
नव-रसाल-बन विहरनसीला । सोह कि कोकिल विपिन करीला ।
रहहु भवन अस हृदय विचारि । चंदवदनि दुख कानन भारी ।

दो०—सहज सुहृद-गुरु-स्वामि-सिख, जो न करइ सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि ॥४९॥

सुनि मृदु वचन मनोहर पिय के । लोचन ललित भरे जल सिय के ।
सीतल सिख दाहक भइ कैसे । चकइहि सरदचंद निसि जैसे ।
उतरु न आव विकल वैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ।
वरवस रोकि विलोचनवारी । धरि धीरज उर अवनिकुमारी ।
लागि सासुपग कह कर जोरी । छमवि देवि बड़ि अविनय मोरी ।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई । जेहि विधि मोर परमहित होई ।
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं । पिय-वियोग-सम दुख जग नाहीं ।

दो०—प्राननाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान ।
तुम्ह विनु रघु-कुल-कुमुद-विधु, सुरपुर नरक समान ॥५०॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रियपरिवार सुहृद-समुदाई ।

सासु ससुर गुरु सजन सहाई । सुत सुंदर सुसील सुखदाई ।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ।
तन धन धाम धरनि पुरराजू । पतिबिहीन सब सोकसमाजू ।
भोग रोगसम भूषन भारू । जम-जातना-सरिस संसारू ।
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तइसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद-बिमल-बिधु-बदन निहारे ।

दो०—खग मृग परिजन नगर बन, बलकल बिमल दुकूल ।
नाथसाथ सुर-सदन-सम, परनसाल सुखमूल ॥५१॥

बनदेवी बनदेव उदारा । करिहहिं सासु-ससुर-सम सारा ।
कुस-किसलय-साथरी सुहाई । प्रभुसँग मंजु मनोजतुराई ।
कंद मूल फल अमिय अहारू । अवध-सौध-सत-सरिस पहारू ।
छिनुछिनुप्रभु-पद-कमलबिलोकी । रहिहउँमुदित दिवसजिमिकोकी ।
बनदुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ।
प्रभु-बियोग-लव-लेस-समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ।
अस जियजानि सुजान सिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाड़िय जनि ।
बिनती बहुत करउँ का स्वामी । करुनामय उर-अंतर-जामी ।

दो०—राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिअहि प्रान ।
दीनबंधु सुंदर सुखद, सील-सनेह-निधान ॥५२॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरनसरोज निहारी ।
सबहि भाँति पिय सेवा करिहउँ । मारगजनित सकल स्रम हरिहउँ ।
पाय पखारि बैठ तरुछाहीं । करिहउँ बायु मुदित मन माहीं ।
स्रम-कन-सहित स्याम तनु देखे । कहँ दुखसमउ प्रानपति पेखे ।
सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ।
बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि तात बयारि न मोही ।
को प्रभुसँग मोहि चितवनि हारा । सिंह बधुहि जिमि ससकसियारा ।

मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू । तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू ।
दो०—ऐसेउ वचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान ।
तौ प्रभु-विषम-वियोग-दुख, सहिहहिं पाँवर प्रान ॥ ५३ ॥

अस कहि सीय बिकल भइ भारी । बचन वियोग न सकी सँभारी ।
देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहिँ राखिहि प्राना ।
कहेउ कृपाल भानु-कुल-नाथा । परिहरि सोच चलहु बन साथा ।
नहिँ विषाद कर अवसर आजू । बेगि करहु बन-गवन-समाजू ।
कहि प्रियवचन प्रिया समुझाई । लगे मातुपद आसिष पाई ।
वेगि प्रजादुख मेटब आई । जननी निठुर विसरि जनि जाई ।
फिरिहि दसा विधि बहुरि कि मोरी । देखिहउँ नयन मनोहर जोरी ।
सुदिन सुघरी तात कब होइहि । जननी जियत वदनविधु जोइहि ।

दो०—बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुबर तात ।
कबहिँ बोलाइ लगाइ हिय, हरषि निरखिहउँ गात ॥ ५४ ॥

लखि सनेह कातरि महतारी । बचन न आव विकल भइ भारी ।
राम प्रबोध कीन्ह विधि नाना । समउ सनेह न जाइ बखाना ।
तब जानकी सासुपग लागी । सुनिय माय मैं परम अभागी ।
सेवा-समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ।
तजब छोभ जनि छाड़िय छोहू । करम कठिन कछु दोष न मोहू ।
सुनि सियवचन सासु अकुलानी । दसा कवनि विधि कहउँ बखानी ।
बारहिँ बार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरज सिख आसिष दीन्ही ।
अचल होउ अहिवात तुम्हारा । जब लगि गंग-जमुन-जल-धारा ।

दो०—सीतहि सासु असीस सिख, दीन्ह अनेक प्रकार ।
चली नाइ पदपदुम सिरु, अति हित बारहिँ बार ॥ ५५ ॥

समाचार जब लछिमन पाये । व्याकुल विलषवदन उठि धाये ।
कंप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अति प्रेम अधीरा ।
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े । मीन दीन जनु जल ते काढ़े ।

सोच हृदय विधि का होनिहारा। सब सुख सुकृत सिरान हमारा।
मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिँ भवन कि लेइहहिँ साथा।
राम विलोकि बंधु करजोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे।
बोले वचन राम नयनागर। सील-सनेह-सरल-सुख-सागर।
तात प्रेमबस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू।

दो०—मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख, सिर धरि करहिँ सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, न तरु जनम जग जाय ॥ ५६ ॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु-पितु पद-सेवकाई।
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं। राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं।
मैं वन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा। होइ सबहि विधि अवध अनाथा।
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह-दुख-भारू।
रहहु करहु सब कर परितोषू। न तरु तात होइहि बड़ दोषू।
जासु राज प्रियप्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।
रहहु तातु असि नीति विचारी। सुनत लषन भये व्याकुल भारी।
सियरे वचन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे।

दो०—उतर न आवत प्रेमबस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त कहा बसाइ ॥ ५७ ॥

दीन्हि मोहि सिख नीक गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं।
नरवर धीर धरम-धुर-धारी। निगम नीति कहँ ते अधिकारी।
मैं सिसु-प्रभु-सनेह-प्रतिपाला। मंदर मेरु कि लेहिं मराला।
गुरु पितु मातु न जानउ काहू। कहउ सुभाउ नाथ पतिआहू।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर-अंतर-जामी।
धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति-भूति-सुगति-प्रिय जाही।
मन-क्रम-बचन चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिय कि सोई।

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदुबचन विनीत ।
समुझाये उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥ ५८ ॥

माँगहु विदा मातु सन जाई । आवहु वेगि चलहु वन भाई ।
मुदित भये सुनि रघुवर बानी । भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी ।
हरषित हृदय मातु पहिँ आये । मनहुँ अंध फिरि लोचन पाये ।
जाइ जननि पग नायउ माथा । मनु रघुनंदन-जानकि-साथा ।
पूछे मातु मलिन मन देखी । लषन कहा सब कथा विसेखी ।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा ।
लषन लखेउ भा अनरथ आजू । एहि सनेह बस करब अकाजू ।
माँगत विदा सभय सकुचाहीं । जाइ संग विधि कहिहि कि नाहीं ।

दो०—समुझि सुमित्रा राम-सिय, रूप-सुसील-सुभाउ ।
नृपसनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥ ५९ ॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदुबानी ।
तात तुम्हारि मातु वैदेही । पिता राम सब भाँति सनेही ।
अवध तहाँ जहँ रामनिवासू । तहइँ दिवसु जहँ भानुप्रकासू ।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं । अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ।
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइअहि सकल प्रान की नाईं ।
राम प्रानप्रिय जीवन जी के । स्वारथरहित सखा सबही के ।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते । सब मानिअहि राम के नाते ।
अस जिय जानि संग बन जाहू । लेहु तात जग जीवनलाहू ।

दो०—भूरि भागभाजन भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छल, कीन्ह रामपद ठाउँ ॥ ६० ॥

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघु-पति-भगत जासु सुत होई ।
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी । रामविमुख सुत तें हित हानी ।
तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ।
सकल सुकृत कर बड़फल एहू । राम-सीय-पद सहज सनेहू ।

राग रोष इरिषा मद मोहू । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ।
सकल प्रकार विकार विहाई । मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ।
तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु राम सिय जासू ।
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ।

सो०—मातुचरन सिर नाइ, चले तुरत संकित हृदय ।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भागबस ॥ ६१ ॥

गये लषन जहँ जानकिनाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ।
बंदि राम-सिय-चरन सुहाये । चले संग नृपमंदिर आये ।
सियसमेत दोउ तनय निहारी । व्याकुल भयउ भूमिपति भारी ।
सकइ न बोलि विकल नरनाहू । सोकजनित उर दारुन दाहू ।
नाइ सीस पद अति अनुरागा । उठि रघुवीर बिदा तब माँगा ।
पितु असीस आयसु मोहि दीजै । हरष समय बिसमय कत कीजै ।
तात किये प्रिय प्रेमप्रमादू । जस जग जाइ होइ अपवादू ।
सुनि सनेहबस उठि नरनाहा । बैठारे रघुपति गहि बाहा ।
राय रामराखन हित लागी । बहुत उपाय किये छल त्यागी ।
लखा रामरुख रहत न जाने । धरम-धुरं-धर धीर सयाने ।
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही । अतिहित बहुत भाँति सिख दीन्ही ।

दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहिं न सोहानि ।
सरद-चंद-चंदिनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥ ६२ ॥

सीय सकुचबस उतर न देई । सो सुनि तमकि उठी कैकेई ।
मुनि-पट-भूषन-भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदुबानी ।
नृपहिं प्रानप्रिय तुम्ह रघुवीरा । सील सनेह न छाड़िहि भीरा ।
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ । तुम्हहिं जान बन कहिहि न काऊ ।
अस विचारि सोइ करहु जो भावा । राम जननिसिख सुनि सुख पावा ।
भूपहि बचन बानसम लागे । करहिं न प्रान पयान अभागे ।
लोग विकल मुरछित नरनाहू । काह करिय कछु सूझ न काहू ।

राम तुरत मुनिवेष बनाई। चले जनक जननिहिँ सिरु नाई।

दो०—सजि बन-साज-समाज सब, बनिता-बंधु-समेत।
बंदि विप्र-गुर-चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ॥ ९३ ॥
राम लषन सिय जानि चढ़ि, संभुचरन सिरु नाइ।
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ ॥ ९४ ॥

सीता-सचिव-सहित दोउ भाई। सृंगवेरपुर पहुँचे जाई।
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरख बिसेखी।
लषन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहिँ सहित सुख पायउ रामा।
गंग सकल-मुद-मंगल-मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।
कहि कहि कोटिक कथाप्रसंगा। राम विलोकहिँ गंगतरंगा।
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। विबुध-नदी-महिमा अधिकाई।
मज्जनु कीन्ह पंथस्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ।
सुमिरत जाहि मिटइ स्रमभारू। तेहि स्रम यह लौकिक व्यवहारू।

दो०—सुद्ध सच्चिदानंदमय, कंद भानु-कुल-केतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति-सागर-सेतु ॥ ९५ ॥

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई।
लिय फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियहरष अपारा।
करि दंडवत भेँट धरि आगे। प्रभुहि विलोकत अति अनुरागे।
सहज- सनेह- बिवस रघुराई। पूछी कुसल निकट बैठाई।
नाथ कुसल पदपंकज देखे। भयउँ भागभाजन जन लेखे।
देव धरनि-धन-धाम तुम्हारा। मैँ जन नीच सहित परिवारा।
कृपा करिय पुर धारिय पाऊ। थापिय जन सब लोग सिहाऊ।
कहेहु सत्य सब सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना।

दो०—बरष चारिदस बास बन, मुनि-व्रत-बेष-अहारु।
ग्रामबास नहिँ उचित सुनि, गुहहि भयउ दुखभारु ॥ ९६ ॥

राम-लषन-सिय-रूप निहारी। कहहिँ सप्रेम ग्राम-नर-नारी।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे।
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयनलाहु हमहिं बिधि दीन्हा।
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना।
लेइ रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा।
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुबर संध्या करन सिधाये।
गुह सवाँरि साथरी डसाई। कुस-किसलय-मय मृदुल सुहाई।
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी।

दो०—सिय-सुमंत्र-भ्राता-सहित, कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघु-बंस-मनि, पाय पलोटत भाइ॥ ८७॥

उठे लषन प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदुबानी।
कछुक दूरि सजि बानसरासन। जागन लगे बैठि बीरासन।
गुह बोलाइ पाहरु प्रतीती। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती।
आपु लषन पहिँ बैठेउ जाई। कटि भाथा सर चाप चढ़ाई।
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेमबस हृदय बिषादू।
तनु पुलकित जल लोचन बहई। बचन सप्रेम लषन सन कहई।
भू-पति-भवन सुभाय सुहावा। सुर-पति-सदन न पटतर पावा।
मनि-मय-रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सवाँरे।

दो०—सुचि सुबिचित्र सु-भोग-मय, सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनिदीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास॥ ८८॥

बिबिध बसन उपधान तुराई। छीरफेन मृदु बिसद सुहाई।
तहँ सियराम सयन निसि करहीं। निज छबि रति-मनोज-मद हरहीं।
ते सियराम साथरी सोये। स्रमित बसनबिनु जाहिं न जोये।
मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी।
जोगवहिँ जिन्हहिं प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं।
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ।
रामचंद्र पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही।

सिय रघुवीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू।

दो०—कैकयनंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहिं, सुख अवसर दुख दीन्ह॥ ६९॥

भइ दिन-कर-कुल-विटप-कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी।
भयउ विषाद निषादहिं भारी। रामसीय महिसयन निहारी।
बोले लषन मधुर-मृदु-बानी। ज्ञान-बिराग-भगति-रस-सानी।
काहु न कोउ सुख दुखकर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता।
जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।
जनम मरन जहँ लग जगजालू। संपति बिपति करम अरु कालू।
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरग नरक जहँ लगि व्यवहारू।
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोहमूल परमारथ नाहीं।

दो०—सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥ ७०॥

अस बिचारि नहिँ कीजिय रोषू। काहुहि बादि न देइय दोषू।
मोहनिसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।
एहि जग जामिनि जागहिँ जोगी। परमारथी प्रपंचबियोगी।
जानिय तबहिँ जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा।
होइ बिवेक मोहभ्रम भागा। तब रघु-नाथ-चरन अनुरागा।
सखा परमपरमारथ एहू। मन-क्रम-बचन रामपद नेहू।
राम ब्रह्म परमारथरूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा।
सकल-बिकार-रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिँ बेदा।

दो०—भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुरहित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तन, सुनत मिटहिँ जगजाल॥ ७१॥

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय-रघुवीर-चरन रत होहू।
कहत रामगुन भा भिनुसारा। जागे जगमंगल दातारा।
सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बटछीर मँगावा।

अनुजसहित सिरजटा बनाये । देखि सुमंत्र नयनजल छाये ।
हृदय दाह अति बदन मलीना । कह कर जोरि वचन अति दीन्हा ।
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा । लेइ रथ जाहु राम के साथा ।
बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई । आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ।
लषन राम सिय आनेहु फेरी । संसय सकल सँकोच निबेरी ।

दो०—नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहिय करउँ बलि सोइ ।
करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥ ७२ ॥

तात कृपा करि कीजिय सोई । जाते अवध अनाथ न होई ।
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरममत तुम्ह सब सोधा ।
सिबि दधीच हरिचंद नरेसा । सहे धरमहित कोटि कलेसा ।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना । धरम धरेउ सहि संकट नाना ।
धरम न दूसर सत्यसमाना । आगम निगम पुरान बखाना ।
मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा । तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा ।
संभावित कहुँ अपजसलाहू । मरन-कोटि-सम दारुन दाहू ।
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ । दिये उतरु फिरि पातक लहऊँ ।

दो०—पितुपद गहि कहि कोटि नति, बिनय करब कर जोरि ।
चिंता कवनिहुँ बात कै, तात करिय जनि मोरि ॥ ७३ ॥

तुम्ह पुनि पितुसम अतिहित मोरे । बिनती करउँ तात कर जोरे ।
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारे । दुख न पाव पितु सोच हमारे ।
सुनि सुमंत्र प्रिय सीतल बानी । भयउ बिकल जनु फनि मनिहानी ।
नयन सूझ नहि सुनइ न काना । कहि न सकइ कछु अति अकुलाना ।
राम प्रबोध कीन्ह बहु भाँती । तदपि होति नहिं सीतल छाती ।
जतन अनेक साथहित कीन्हे । उचित उतर रघुनंदन दीन्हे ।
मेटि जाइ नहि रामरजाई । कठिन करमगति कछु न बसाई ।
राम-लषन-सिय-पद सिरु नाई । फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई ।

दो०—रथ हाँकेउ हय रामतन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद विषादबस, धुनहिं सीस पछिताहिं॥ ७४॥

जासु वियोग विकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जीहहिं कैसे।
बरबस राम सुमंत्र पठाये। सुरसरितीर आप तब आये।
माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।
चरन-कमल-रज कहँ सब कहई। मानुषकरनि मूरि कछु अहई।
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई।
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।
एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू।
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पदपदुम पखारन कहहू।

छंद—पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहउँ।
मोहि राम राउरि आन दसरथसपथ सब साँची कहउँ।
बरु तीर मारहु लषन पै जब लगि न पाय पखारिहउँ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहउँ॥

सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना ऐन, चितइ जानकी-लषन-तन॥ ७५॥

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई।
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंब उतारहि पारू।
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जग किय तिहुँ पगहुँ ते थोरा।
पदनख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभुबचन मोह मति करषी।
केवट रामरजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा।
अति आनंद उमगि अनुरागा। चरनसरोज पखारन लागा।
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं।

दो०—पद पखारि जलपान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयउ लेइ पार॥ ७६॥

उतरि ठाढ़ भय सुरसरिरेता। सीय राम गुह लपन समेता।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।
पियहिय की सिय जाननिहारी। मनिमुँदरी मन मुदित उतारी।
कहेउ कृपाल लेहु उतराई। केवट चरन गहेउ अकुलाई।
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष - दुख - दारिद - दावा।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी।
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे।
फिरती वार मोहि जोइ देवा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा।

दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लपन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
विदा कीन्ह करुनायतन, भगति विमल वर देइ॥ ७७॥
तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु,नाइ सुरसरिहिं माथ।
सखा-अनुज-सिय-सहित बन, गवन कीन्ह रघुनाथ॥ ७८॥

तेहि दिन भयउ बिटप तर वासू। लपन सखा सब कीन्ह सुपासू।
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु देखि प्रभु जाई।
कहि सिय लपनहिं सखहिं सुनाई। श्रीमुख तीरथ - राज - बड़ाई।
करि प्रनाम देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा।
एहि विधि आइ विलोकी वेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी।
मुदित नहाइ कीन्हि सिवसेवा। पूजि जथाविधि तीरथदेवा।
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दंडवत मुनि उर लाये।
मुनि-मन-मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंदरासि जनु पाई।

दो०—दीन्ह असीस मुनीस उर, अति अनंद अस जानि।
लोचनगोचर सुकृत फल,मनहुँ किये विधि आनि॥ ७९॥

कुसलप्रस्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे।
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहुँ अमी के।
सीय-लपन-जन-सहित सुहाये। अति रुचि राम मूलफल खाये।
भये बिगतस्रम राम सुखारे। भरद्वाज मृदुवचन उचारे।

आजु सुफल तप तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जाग विरागू।
सुफल सकल-सुभ-साधन-साजू। राम तुम्हहिं अवलोकत आजू।
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी।
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज-पद-सरसिज सहजसनेहू।

दो०—करम बचन मन छाँड़ि छल, जब लगि जन न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहिं, किये कोटि उपचार॥ ८०॥

सुनि मुनि बचन राम सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने।
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहिं सुनावा।
सो बड़ सो सब-गुन-गन-गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू।
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुख अनुभवहीं।
राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिय हम केहि मग जाहीं।
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहँ अहहीं।
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये। सुनि मन मुदित पचासक आये।
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा।
मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे।
करि प्रनाम रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई।
ग्राम निकट निकसहिं जब जाई। देखहिं दरस नारि नर धाई।
होहिं सनाथ जनमफल पाई। फिरहिं दुखित मन संग पठाई।

दो०—बिदा किये बटु बिनय करि, फिरे पाइ मनकाम।
उतरि नहाये जमुनजल, जो सरीरसम स्याम॥ ८१॥
तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहि सिखावन दीन्ह।
रामरजायसु सीस धरि, भवन गवन तेइ कीन्ह॥ ८२॥

पुनि सिय रामलषन कर जोरी। जमुनहिं कीन्ह प्रनाम बहोरी।
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कै करत बड़ाई।
पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता।
राजलषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे।

मारग चलहु पयादेहिं पाये। ज्योतिष झूठ हमारेहि भाये॥
अगम पंथ गिरि कानन भारी। तेहिं महँ साथ नारि सुकुमारी॥
करि केहरि वन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाव जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरव बहोरि तुम्हहिं सिर नाई॥

दो०—एहि विधि पूछहिं प्रेम बस, पुलक गात जल नैन।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहिं, कहि विनीत मृदु वैन॥ ८३॥

जे पुर गावँ बसहिं मग माहीं। तिन्हहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्यमय परम सुहाये॥
जहँ जहँ रामचरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुन्यपुंज मग-निकट-निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुर-पुर-बासी॥
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता-लषन-सहित घनस्यामहिं॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव-सर सरित सराहहिं॥
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम-पद-पदुम-परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥

दो०—छाहँ करहिं घन विबुधगन, बरषहि सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि वन बिहँग मृग, राम चले मग जाहिं॥ ८४॥

सीता - लषन - सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥
राम-लषन-सिय-रूप निहारी। पाइ नयनफल होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुर मनि ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥
रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिँ सँग लागे॥
एक नयनमग छवि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥

दो०—एक देखि वटछाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइय छिनुकु स्रम, गवनब अबहिँ कि प्रात॥ ८५॥

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइय नाथ कहहिं मृदुवानी।
सुनि प्रियवचन प्रीति अति देखी। राम कृपालु सुसील विसेखी।
जानी स्रमित सीय मन माहीं। घरिक विलंब कीन्ह वटछाहीं।
मुदित नारिनर देखहिं सोभा। रूपअनूप नयन मन लोभा।
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र-मुख-चंद्र-चकोरा।
तरुन-तमाल-बरन तनु सोहा। देखत कोटि-मदन-मन मोहा।
दामिनिवरन लषन सुठि नीके। नखसिख सुभग भावते जी के।
मुनिपट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं करकमलनि धनुतीरा।

दो०—जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर भुज नयन विसाल।
सरद-परब-विधु-बदन वर, लसत स्वेद-कन-जाल॥८६॥

बरनि न जाई मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी।
राम-लषन-सिय-सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई।
थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे।
सीयसमीप ग्रामतिय जाहीं। पूछत अति सनेह सकुचाहीं।
बार बार सब लागहिं पाये। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाये।
राजकुमारि विनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं।
स्वामिनि अविनय छमवि हमारी। विलगु न मानव जानि गवाँरी।
राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने।

दो०—स्यामल गोर किसोर वर, सुंदर सुखमा ऐन।
सरद-सर्वरी-नाथ-मुख, सरद सरोरुह नैन॥८७॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुचि सीय मनमहुँ मुसुकानी।
तिनहिं विलोकि विलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति वर बरनी।
सकुचि सप्रेम बाल-मृग-नैनी। बोली मधुर बचन पिकबैनी।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लषन लघु देवर मोरे।
बहुरि बदनविधु अंचल ढाँकी। पियतन चितइ भौंह करि बाँकी।

खंजनमंजु तिरीछे नैननि । निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि ।
भईं मुदित सब ग्रामवधूटी । रंकन्ह रायरासि जनु लूटी ।

दो०—अति सप्रेम सियपाय परि, बहु विधि देहिं असीस ।
सदा सोहागिन होहु तुम्ह, जब लगि महि अहिसीस ॥८८॥

पारवतीसम पतिप्रिय होहू । देवि न हम पर छाड़ब छोहू ।
पुनि पुनि विनय करिय कर जोरी । जौं एहि मारग फिरिय बहोरी ।
दरसन देब जानि निज दासी । लखी सीय सब प्रेमपियासी ।
मधुर वचन कहि कहि परितोषी । जनु कुमुदिनीं कौमुदी पोषी ।
तबहिं लषन रघुबररुख जानी । पूछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी ।
सुनत नारि नर भये दुखारी । पुलकित गात विलोचन बारी ।
मिटा मोद मन भये मलीने । विधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ।
समुझि करमगति धीरज कीन्हा । सोधिसुगममगुतिन्हकहिदीन्हा ।

दो०—लषन-जानकी-सहित तब, गवन कीन्ह रघुनाथ ।
फेरे सब प्रिय वचन कहि, लिये लाइ मन साथ ॥८९॥
एहि विधि रघु-कुल-कमल-रवि, मग लोगन्ह सुख देत ।
जाहिं चले देखत विपिन, सिय-सौमित्रि-समेत ॥९०॥

आगे राम लषन बने पाछे । तापसवेष विराजत काछे ।
उभय बीच सिय सोहति कैसी । ब्रह्म-जीव-बिच माया जैसी ।
बहुरि कहेउँ छवि जसि मन बसई । जनु मधु-मदन-मध्य रति लसई ।
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही । जनु बुध विधु बिच रोहनि सोही ।
प्रभु-पद रेख बीच बिच सीता । धरति चरन मग चलति सभीता ।
सीय - राम- पद- अंक बराये । लषन चलहिं मग दाहिन बायें ।
राम-लषन-सिय-प्रीति सुहाई । वचन अगोचर किमि कहि जाई ।
खग मृग मगन देखि छवि होहीं । लिये चोरि चित राम बटोही ।
दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ ।
भव-मग-अगम अनंद तेइ, विनु स्रम रहे सिराइ ॥९१॥

अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ। बसहिं लषन-सिय-राम बटाऊ।
राम-धाम-पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुं मुनि कोई।
तब रघुबीर स्रमित सिय जानी। देखि निकट बट सीतल-पानी।
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई।
देखत बन सर सैल सुहाये। बालमीकि आस्रम प्रभु आये।
राम दीख मुनिबास सुहावन। सुंदर गिरि कानन जल पावन।
सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रज भूले।
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं।

दो०—सुचि सुंदर आस्रम निरखि, हरखे राजिवनैन।
सुनि रघु-बर-आगमन मुनि, आगे आयउ लैन ॥ ९२ ॥

मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबाद बिप्रबर दीन्हा।
देखि रामछबि नयन जुड़ाने। करि सनमान आस्रमहिं आने।
मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाये। तिन्ह कहँ आसन दिये सुहाये।
कंद मूल फल मधुर मँगाये। सिय सौमित्र राम फल खाये।
बालमीकि मन आनँद भारी। मंगलमूरति नयन निहारी।
तब करकमल जोरि रघुराई। बोले बचन स्रवन-सुख-दाई।
तुम्ह त्रि-काल-दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा।
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बन रानी।

दो०—तात बचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुन्यप्रभाउ ॥ ९३ ॥

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भये सुकृत सब सुफल हमारे।
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेग न पावइ कोई।
मुनि तापस जिन्ह तें दुख लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं।
अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊं। सिय-सौमित्र-सहित जहँ जाऊं।
तहँ रचि रुचिर परन-तृन-साला। बास करउँ कछु काल कृपाला।
सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी।

कस न कहहु अस रघु-कुल-केतू । तुम्ह पालक संतत स्रुति सेतू ।

दो०—पूछेहु मोहिं कि रहउँ कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ ।
जहँ न होहु तहँ देहुँ कहि, तुम्हहि देखावहुँ ठाउँ ॥ ९४ ॥

सुनि मुनि बचन प्रेमरस साने । सकुचि राम मनमहँ मुसुकाने ।
कह मुनि सुनहु भानु-कुल-नायक । आस्रम कहउँ समय सुखदायक ।
चित्रकूट गिरि करहु निवासू । तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ।
सैल सुहावन कानन चारू । करि-केहरि-मृग-बिहँग बिहारू ।
नदी पुनीत पुरान बखानी । अत्रिप्रिया निज-तप-बल आनी ।
सुरसरिधार नाउँ मंदाकिनि । जो सब-पातक-पोतक-डाकिनि ।
अत्रि-आदि-मुनि-बर बहु बसहीं । करहिं जोग जप तप तन कसहीं ।
चलहु सफल स्रम सब कर करहु । राम देहु गौरव गिरि बरहू ।

दो०—चित्र-कूट-महिमा अमित, कही महामुनि गाइ ।
आइ नहाये सरितवर, सिय समेत दोउ भाइ ॥ ९५ ॥

रघुबर कहेउ लषन भल घाटू । करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू ।
लषन दीख पय उतर करारा । चहुँदिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ।
नदी पनच सर सम दम दाना । सकल कलुष कलि साउज नाना ।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी । चुकइ न घात मार मुठभेरी ।
अस कहि लषन ठाँव देखरावा । थल बिलोकि रघुबर सुख पावा ।
रमेउ राममन देवन्ह जाना । चले सहित सुरपति परधाना ।
कोल-किरात-बेष सब आये । रचे परन-तृन-सदन सुहाये ।
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला । एक ललित लघु एक बिसाला ।

दो०—राम-लषन-सीता सहित, सोहत परन निकेत ।
जिमि बासव बस अमरपुर, सची-जयंत-समेत ॥ ९६ ॥

जोगवहिं प्रभु सियलषनहिं कैसे । पलक बिलोचन गोलक जैसे ।
सेवहिं लषन सीय रघुबीरहिं । जिमि अबिवेकी पुरुष सरीरहिं ।

एहि विधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग-मृग-सुर-तापस-हित-कारी।
कहेउँ राम-बन-गवन सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिम आवा।
फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई। सचिवसहित रथ देखेसि आई।
मंत्री विकल विलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ विषादू।
राम राम सिय लषन पुकारी। परेउ धरनितल व्याकुल भारी।
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख विहँग अकुलाहीं।

दो०—नहिं तृन चरहिं न पियहिं जल, मोचहिं लोचनबारि।
व्याकुल भयउ निषाद सब, रघु-बर-बाजि निहारि॥ ९७॥

धरि धीरज तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु विषादू।
तुम्ह पंडित परमारथ ज्ञाता। धरहु धीर लखि विमुख विधाता।
विविध कथा कहि कहि मृदुबानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी।
सोकसिथिल रथ सकइ न हाँकी। रघुबर-बिरह-पीर उर बाँकी।
चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बनमृग मनहुँ आनि रथ जोरे।
अढुकि परहिं फिर हेरहिं पीछे। रामवियोग विकल दुख तीछे।
जो कह रामु लषन वैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही।
बाजि विरहगति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक विकल जेहि भाँती।

दो०—भयउ निषाद विषादबस, देखत सचिवतुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी संग॥ ९८॥

बहु विधि करत पंथ पछितावा। तमसातीर तुरत रथ आवा।
बिदा किये करि विनय निषादा। फिरे पाँय परि विकल विषादा।
पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुरु-बाम्हन-गाई।
बैठि विटपतर दिवस गवाँवा। साँझ समय तब अवसर पावा।
अवधप्रवेस कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन रथ राखि दुआरे।
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये। भूपद्वार रथ देखन आये।
रथ पहिचानि विकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे।
नगर-नारि-नर व्याकुल कैसे। निघटत नीर मीनगन जैसे।

दो०—सचिवआगमन सुनत सब, विकल भयउ रनवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहि, मानहुँ प्रेतनिवासु ॥ ९९ ॥

अति आरति सब पूछहिं रानी। उतरु न आव विकल भइ बानी।
सुनइ न स्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा।
दासिन्ह दीख सचिवविकलाई। कौसल्यागृह गईं लेवाई।
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमियरहित जनु चंद विराजा।
आसन-सयन-विभूषन-हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना।
लेइ उसास सोच यहि भाँती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती।
लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती।
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लषन वैदेही।

दो०—देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनाम।
सुनत उठे व्याकुल नृपति, कहु सुमंत्र कहँ राम ॥ १०० ॥

भूप सुमंत्र लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई।
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि बारी।
रामकुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लषन वैदेही।
आने फेरि कि बनहिं सिधाये। सुनत सचिवलोचन जल छाये।
सोक विकल पुनि पूछ नरेसू। कहु सिय-राम-लषन-संदेसू।
राम-रूप-गुन-सील-सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ।
राज सुनाइ दीन्ह बनवासू। सुनि मन भयउ न हरष हरासू।
सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना।

दो०—सखा राम-सिय-लषन जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ ॥ १०१ ॥

पुनि पुनि पूछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम-सुअन-सँदेस सुनाऊ।
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। राम-लषन-सिय नयन देखाऊ।
सचिव धीर धरि कह मृदुबानी। महाराज तुम्ह पंडित ज्ञानी।
बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधुसमाज सदा तुम्ह सेवा।

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभ प्रियमिलन बियोगा॥
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥
सुख हरपहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं॥
धीरज धरहु बिवेक बिचारी। छाड़िय सोच सकल हितकारी॥

दो०—प्रथम बासु तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपान करि, सियसमेत दोउ बीर॥ १०२॥

कीन्ह निषाद बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गवाँई॥
होत प्रात बटछीरु मँगावा। जटामुकुट निज सीस बनावा॥
बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा॥
तात प्रनाम तात सन कहेहू। बार बार पदपंकज गहेहू॥
करबि पाय परि बिनय बहोरी। तात करिय जनि चिंता मोरी॥
बनमग मंगल कुसल हमारे। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे॥

छंद—तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहउँ।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहउँ॥
जननी सकल परितोपि परि परि पाय कर बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतन जेहि कुसली रहहिं कोसलधनी॥

सो०—गुरु सन कहब सँदेस, बार बार पदपदुम गहि।
करब सोइ उपदेस, जेहि न सोच मोहि अवधपति॥ १०३॥

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनायेहु बिनती मोरी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जा तें रह नरनाह सुखारी॥
कहब सँदेसु भरत के आये। नीति न तजिय राजपद पाये॥
पालेहु प्रजहिं करम मन बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी॥
अउर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु-मातु-सुजन-सेवकाई॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करइ न काऊ॥
लपन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥
बार बार निज सपथ दिवाई। कहबि न तात लपनलरिकाई॥

दो०—कहि प्रनाम कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित वचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह॥ १०४॥

रामसखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई।
लषन बानधनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभुआयसु पाई।
तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहिं नाव चलाई।
रघु-कुल-तिलक चले एहि भाँती। देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती।
मैं आपन किमि कहउँ कलेसू। जियत फिरउँ लेइ रामसँदेसू।
अस कहि सचिव वचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ।
सूत वचन सुनतहि नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुनदाहू।
तलफत विषम मोह मन मापा। माँजा मनहुँ मीन कहँ व्यापा।
करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महाविपति किमि जाइ बखानी।
सुनि बिलाप दुखहु दुख लागा। धीरजहु कर धीरज भागा।

दो०—भयउ कोलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर सोर।
विपुल बिहँगवन परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोर॥१०५॥

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि विहीन जनु व्याकुल व्यालू।
इंद्री सकल विकल भइँ भारी। जनु सरसरसिज बन बिनु बारी।
कौसल्या नृप दीख मलाना। रवि-कुल-रवि अथयेउ जिय जाना।
उर धरि धीर राममहतारी। बोली वचन समय अनुसारी।
नाथ समुझि मन करिय बिचारू। राम-वियोग-पयोधि अपारू।
करनधार तुम्ह अवधजहाजू। चढ़ेउसकल प्रिय-पथिक-समाजू।
धीरज धरिय त पाइय पारू। नाहिं न बूड़िहि सब परिवारू।
जौं जिय धरिय विनय पिय मोरी। राम लषन सिय मिलहिं बहोरी।

दो०—प्रिया वचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आँख उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचेउ सीतल बारि॥ १०६॥

धरि धीरज उठि बैठि भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू।
कहाँ लषन कहँ राम सनेही। कहँ प्रिय-पुत्र-बधू बैदेही।

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुगसरिस सिराति न राती।
तापस-अंध-साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई।
भयउ बिकल बरनत इतिहासा। रामरहित धिग जीवनआसा।
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेमपनु मोर निबाहा।
हा रघुनंदन प्रानपिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते।
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु-हित-चित-चातक-जलधर।

दो०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबरबिरह, राउ गयउ सुरधाम॥ १०७॥

जियन मरन फल दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा।
जियत राम-बिधु-बदन निहारा। रामबिरह करि मरन सवाँरा।
सोकबिकल सब रोवहिं रानी। रूप सील बल तेज बखानी।
करहिँ बिलाप अनेक प्रकारा। परहिँ भूमितल बारहिँ बारा।
बिलपहिँ बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहिँ पुरबासी।
अथयेउ आजु भानु-कुल-भानू। धरम-अवधि गुन-रूप-निधानू।
गारी सकल कैकइहि देहीं। नयनबिहीन कीन्ह जग जेहीं।
एहि बिधि बिलपत रैन बिहानी। आये सकल महामुनि ज्ञानी।

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समयसम, कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहिँ कर, निज बिज्ञान-प्रकास॥ १०८॥

तेल नाव भरि नृपतन राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा।
धावहु बेगि भरत पहिँ जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू।
एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुरु बोलाइ पठयउ दोउ भाई।
सुनि मुनिआयसु धावन धाये। चले बेगि बरबाजि लजाये।
अनरथ अवध अरंभेउ जब तेँ। कुसगुन होहिँ भरत कहँ तब ते।
देखहिँ राति भयानक सपना। जागि करहिँ कटु कोटि कलपना।
बिप्र जेवाँइ देहिँ दिन दाना। सिव-अभिषेक करहिं बिधि नाना।
माँगहिँ हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई।

दो०—एहि विधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ।
गुरुअनुसासन स्रवन सुनि, चले गनेस मनाइ॥ १०६॥

चले समीरवेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके।
हृदय सोच बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जिय जाउँ उड़ाई।
एक निमेष बरपसम जाई। एहि बिधि भरत नगर नियराई।
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।
खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरतमन सूला।
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगर बिसेषि भयावन लागा।
खग मृग हय गय जाहिं न जोये। राम-बियोग-कुरोग बिगोये।
नगर-नारि-नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी।

दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गवहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूछि न सकहिं, भय बिषाद मन माहिं॥११०॥

हाट बाट नहिं जाहिं निहारी। जनु पुर दह दिसि लागि दवारी।
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रवि-कुल-जलरुह-चंदिनि।
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहिं भेंटि भवन लेइ आई।
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुँ तुहिन बनजबन मारा।
कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती।
सुतहि ससोच देखि मन मारे। पूछति नैहर कुसल हमारे।
सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूछी निज-कुल-कुसल भलाई।
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लषन प्रिय भ्राता।

दो०—सुनि सुतबचन सनेहमय, कपटनीर भरि नैन।
भरत-स्रवन-मन-सूल-सम, पापिनि बोली बैन॥ १११॥

तात बात मैं सकल सवाँरी। भइ मंथरा सहाय बिचारी।
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुर-पति-पुर पगु धारेउ।
सुनत भरत भय बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरिनादा।
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी।

चलत न देखन पायउँ तोही । तात न रामहिँ सौंपेहु मोही ।
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी । कहु पितुमरन हेतु महतारी ।
सुनि सुतवचन कहति कैकेई । मरमु पाछि जनु माहुर देई ।
आदिहु तेँ सब आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदितमन बरनी ।

दो०—भरतहि बिसरेउ पितुमरन, सुनत राम-बन-गौन ।
हेतु अपनपउ जानि जिय, थकित रहे धरि मौन ॥ ११२ ॥

बिकलबिलोकि सुतहि समुझावति । मनहुँ जरे पर लोन लगावति ।
तात राउ नहिँ सोचन जोगू । बढ़इ सुकृत जस कीन्हेउ भोगू ।
जीवत सकल जनम फल पाये । अंत अमर-पति-सदन सिधाये ।
अस अनुमानि सोच परिहरहू । सहित समाज राज पुर करहू ।
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू । पाके छत जनु लाग अँगारू ।
धीरज धरि भरि लेहिँ उसासा । पापिनि सबहिँ भाँति कुल नासा ।
जौँ पै कुरुचि रही अति तोही । जनमत काहे न मारेसि मोही ।
पेड़ कांटि तैं पालउ सींचा । मीनजियन निति बारि उलीचा ।

दो०—हंसबंस दसरथ जनक, राम लषन से भाइ ।
जननी तूँ जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ ॥ ११३ ॥

जब तैं कुमति कुमत जिय ठयऊ । खंड खंड होइ हृदय न गयऊ ।
बर माँगत मन भइ नहिँ पीरा । गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा ।
भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही । मरनकाल बिधि मति हरि लीन्ही ।
बिधिहु न नारि हृदयगति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ।
सरल सुसील धरमरत राऊ । सो किमि जानइ तीयसुभाऊ ।
अस को जीव जंतु जग माहीं । जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीँ ।
भे अति अहित राम तेउ तोही । को तूँ अहसि सत्य कहु मोही ।
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई । आँखि ओट उठि बैठहि जाई ।

दो०—राम-बिरोधी-हृदय तें, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि ।
मो समान को पातकी, बादि कहउं कछु तोहि ॥ ११४ ॥

कौसल्या पहिं गे दोउ भाई । मन अति मलिन सोच अधिकाई ।
भरतहि देखि मातु उठि धाई । मुरछित अवनि परी भइँ आई ।
देखत भरत विकल भये भारी । परे चरन तनदसा बिसारी ।
मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय राम लषन दोउ भाई ।
कैकइ कत जनमी जग माँझा । जौँ जनमि त भइ काहे न बाँझा ।
कुलकलंक जेहि जनमेउ मोही । अपजस-भाजन प्रिय-जन-द्रोही ।
सरल सुभाव माय हिय लाये । अतिहित मनहुँ राम फिरि आये ।
भेँटेउ बहुरि लषन-लघु-भाई । सोक सनेह न हृदय समाई ।
देखि सुभाउ कहत सब कोई । राममातु अस काहे न होई ।
माता भरत गोद बैठारे । आँसु पोँछि मृदुवचन उचारे ।
अजहुं बच्छ बलि धीरज धरहू । कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ।
जनि मानहु हिय हानि गलानी । काल-करम-गति अघटित जानी ।

दो०—कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु ।
व्याकुल विलपत राजगृह, मानहुं सोकनिवासु ॥ ११५ ॥

विलपहिं विकल भरत दोउ भाई । कौसल्या लिये हृदय लगाई ।
भाँति अनेक भरत समुझाये । कहि विवेकमय बचन सुनाये ।
भरतहु मातु सकल समुझाई । काह पुरान स्रुति कथा सुहाई ।
छलविहीन सुचि सरल सुबानी । बोले भरत जोरि जुगपानी ।
जे अघ मातु-पिता-सुत मारे । गाइगोठ महि-सुर-पुर जारे ।
जे अघ तिय-बालक-बध कीन्हे । मीत महीपति माहुर दीन्हे ।
जे पातक उपपातक अहहीं । करम-बचन-मन-भव कवि कहहीं ।
ते पातक मोहि होहु विधाता । जौँ एहु होइ मोर मत माता ।

दो०—जे परिहरि हरि-हर-चरन, भजहिं भूतगन घोर ।
तिन्ह कइ गति मोहि देउ विधि, जौँ जननी मत मोर ॥ ११६ ॥

बेचहिं बेद धरम दुहि लेहीं । पिसुन पराय पाप कहि देहीं ।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी । बेदविदूषक विस्वविरोधी ।

लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा।
पावउँ मैं तिन्ह के गति घोरा। जौं जननी यहु संमत मोरा।
जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथपथ विमुख अभागे।
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहिं न हरि-हर-सुजस सुहाई।
तजि स्रुतिपंथ बामपथ चलहीं। बंचक बिरचि वेषु जग छलहीं।
तिन्ह कइ गति मोहि शंकर देऊ। जननी जौं यहु जानउं भेऊ।

दो०—मातु भरत के वचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति रामप्रिय तात तुम्ह, सदा वचन मन काय॥ ११७॥

राम प्रान तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहिं प्रान तें प्यारे।
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ वारिचर वारिविरागी।
भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू।
मत तुम्हार यह जो जग कहहीं। सो सपनेहुं सुख सुगति न लहहीं।
अस कहि मातु भरत हिय लाये। थनपय स्रवहिं नयनजल छाये।
करत बिलाप बहुत यहि भाँती। बैठेहि बीति गई सब राती।
वामदेव वसिष्ठ तब आये। सचिव महाजन सकल बोलाये।
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे।

दो०—तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरुबचन सुनि, करन कहेउ सब काजु॥ ११८॥

नृपतनु वेद विहित अन्हवावा। परम विचित्र विमान बनावा।
गहि पग भरत मातु सब राखी। रहीं राम दरसन अभिलाखी।
चंदन-अगर-भार बहु आये। अमित अनेक सुगंध सुहाये।
सरजुतीर रचि चिता बनाई। जनु सुर-पुर-सोपान सुहाई।
यहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।
सोधि सुमृति सब वेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात विधाना।
जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सब कीन्हा।
भये विसुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज वाहन नाना।

दो०—सिंहासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम ॥ ११९ ॥

पितुहित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।
सुदिन सोधि मुनिवर तब आये। सचिव महाजन सकल बोलाये।
बैठे राजसभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई।
भरत बसिष्ट निकट बैठारे। नीति-धरम-मय वचन उचारे।
प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी। केकई कुटिल कीन्हि जसि करनी।
भूप धरमब्रत सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा।
कहत राम-गुन-सील-सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ।
बहुरि लषन-सिय-प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनिज्ञानी।

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस बिधि हाथ ॥ १२० ॥

अस बिचारि केहि देइय दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिय रोसू।
तात बिचार करहु मन माहीं। सोचजोग दसरथ नृप नाहीं।
सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषाद करिय तेहि लागी।
यहु सुनि समुझि सोच परिहरहू। सिर धरि राजरजायसु करहू।
राय राजपद तुम्ह कहँ दीन्हा। पितावचन फुर चाहिय कीन्हा।
तजे राम जेहि बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ रामबिरहागी।
नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितुवचन प्रमाना।
करहु सीस धरि भूपरजाई। यह तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई।

दो०—अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन ॥ १२१ ॥
कीजिय गुरुआयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आये उचित जस, तस तब करब बहोरि ॥ १२२ ॥
सो०—भरत कमलकर जोरि, धीर-धुरंधर धीर धरि।
बचन अमिय जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं ॥ १२३ ॥

मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का।
गुरु-पितु-मातु-स्वामि-हित-बानी। सुनि मनमुदित करिय भलि जानी।
उचित कि अनुचित किये विचारू। धरम जाइ सिर पातकभारू।
तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई।
जद्यपि यह समुझत हउँ नीके। तदपि होत परितोषु न जी के।
अब तुम्ह विनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनि देहू।
उत्तर देउँ छमव अपारधू। दुखित-दोष-गुन गनहिं न साधू।

दो०—पितु सुरपुर सिय राम वन, करन कहहु मोहि राज।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज॥ १२४॥

हित हमार सिय-पति-सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातुकुटिलाई।
मैं अनुमानि दीखि मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं।
सोकसमाज राज केहि लेखे। लषन-राम-सिय-पद बिनु देखे।
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म विचारू।
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जाय जप जोगा।
जाय जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई।
जाउँ राम पहँ आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू।
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़तावस कहहू।

दो०—कैकेइसुअन कुटिल मति, रामविमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुख मोहवस, मोहि से अधम के राज॥ १२५॥

कहउँ साँच सब सुनि पतियाहू। चाहिय धरमसील नरनाहू।
मोहि राज हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं।
मोहि समान को पापनिवासू। जेहि लगि सीयराम बनबासू।
राय राम कहँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा।
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू।
बिनु रघुबीर बिलोकिय बासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू।
राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूमिभोग के भूखे।

कहँ लगि कहउँ हृदयकठिनाई । निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई ।

दो०—कारन तें कारज कठिन, होइ दोस नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ॥ १२६ ॥

कैकेईभव तनु अनुरागे । पावँर प्रान अघाइ अभागे ।
जौं प्रियविरह प्रान प्रिय लागे । देखब सुनब बहुत अब आगे ।
लषन-राम-सिय कहँ बन दीन्हा । पठइ अमरपुर पतिहित कीन्हा ।
लीन्ह विधवपन अपजसु आपू । दीन्हेउ प्रजहिं सोकु संतापू ।
मोहि दीन्ह सुख सुजस सुराजू । कीन्ह कैकई सब कर काजू ।
एहि ते मोर काह अब नीका । तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ।
कैकइजठर जनमि जग माहीं । यह मो कहँ कछु अनुचित नाहीं ।
मोरि बात सब बिधिहि बनाई । प्रजा पाँच कत करहु सहाई ।

दो०—ग्रहग्रहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार ।
ताहि पियाइय बारुनी, कहहु कवन उपचार ॥ १२७ ॥

कैकइसुअन जोग जग जोई । चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई ।
दसरथतनय राम-लघु-भाई । दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई ।
तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका । रायरजायसु सब कहँ नीका ।
उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही । कहहु सुखेन जथारुचि जेही ।
मोहि कु-मातु-समेत बिहाई । कहहु कहिहि के कीन्हि भलाई ।
मो बिनु को सचराचर माहीं । जेहि सियराम प्रानप्रिय नाहीं ।
परम हानि सब कहँ बड़ लाहू । अदिन मोर नहिं दूषन काहू ।
संसय सील प्रेम बस अहहू । सबइ उचित सब जो कछु कहहू ।
गुरु बिबेकसागर जग जाना । जिन्हहिँ बिस्व कर-बदर-समाना ।
मो कहँ तिलकसाज सज सोऊ । भये बिधि बिमुख बिमुख सब कोऊ ।
परिहरि रामसीय जग माही । कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं ।
सो मैं सुनब सहब सुख मानी । अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी ।
डर न मोहि जग कहहि कि पोचू । परलोकहु कर नाहिन सोचू ।

एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सियराम दुखारी।
जीवनलाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन मन लावा।
मोर जनम रघुबरबन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी।

दो०—आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहिँ सिर नाइ।
देखे बिनु रघु-नाथ-पद, जिय कै जरनि न जाइ॥ १२८॥

आन उपाउ मोहि नहिँ सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा।
एकहि आँक इहइ मन माहीँ। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीँ।
जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहि कारन सकल उपाधी।
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिँ कृपा बिसेखी।
सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ।
अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा।
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी।
जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी।

दो०—जद्यपि जनम कुमातु तें, मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिँ, मोहि रघु-बीर-भरोस॥ १२९॥

भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम-सनेह-सुधा जनु पागे।
लोग बियोग-बिषम-बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे।
भा सब के मन मोद न थोरा। जनु घनधुनि सुनि चातक मोरा।
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरत प्रानप्रिय भे सब ही के।
मुनिहि बंदि भरतहि सिर नाई। चले सकल घर बिदा कराई।
कहहि परसपर भा बड़ काजू। सकल चलइ कर साजहि साजू।
नगर लोग सब सजि सजि नाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना।
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी।

दो०—सौंपि नगर सुचि सेवकन, सादर सबहिं चलाइ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब, चले भरत दोउ भाइ॥ १३०॥

तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमतितीर निवासू।

सई तीर बसि चले बिहाने। सृंगबेरपुर सब नियराने।
समाचार सब सुने निषादा। हृदय बिचार करइ सविषादा।
कारन कवन भरत बन जाहीं। है कछु कपटभाउ मन माहीं।
जौं पै जिय न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई।
जानहिँ सानुज रामहि मारी। करउँ अकंटक राज सुखारी।
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंक अब जीवनहानी।
सकल-सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा।
का आचरज भरत अस करहीं। नहिं बिषबेलि अमियफल फरहीं।

दो०—अस विचारि गुह ज्ञाति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवाँसहु बोरहु तरनि, कीजिय घाटारोहु॥ १३१॥

बेगहि भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ।
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिँ एक बढ़ावहिँ करषा।
निज निज साज समाज बनाई। गुहराउतहिँ जोहारे जाई।
देखि सुभट सब लायक जाने। लेइ लेइ नाम सकल सनमाने।
दीन्ह निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू।
एतना कहत छींक भइ बाँये। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाये।
बूढ़ एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिय न होइहि रारी।
रामहि भरत मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रह नाहीं।
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिँ बिमूढ़ा।
भरत-सुभाउ-सील बिनु बूझे। बड़ि हितहानि जानि बिनु जूझे।

दो०—गहहु घाट भट सिमिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तब तस करिहउँ आइ॥ १३२॥

लखब सनेह सुभाय सुहाये। बैर प्रीति नहिँ दुरइ दुराये।
अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे।
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने।
मिलन साजु सजि मिलन सिधाये। मंगलमूल सगुन सुभ पाये।

देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंडप्रनामू।
जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा। भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा।
रामसखा सुनि स्यंदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा।
गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई।

दो०—करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लषन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ॥ १३३॥

भेंटत भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती।
धन्य धन्य धुनि मंगलमूला। सुर सराहि तेहि बरसहिं फूला।
रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूछी कुसल सुमंगल षेमा।
देखि भरत कर सील सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू।
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारीं रानी।
जानि लषनसम देहिं असीसा। जियहु सुखी सय लाख बरीसा।
निरखि निषाद नगर-नर-नारी। भये सुखी जनु लषन निहारी।
कहहिं लहेउ एहि जीवनलाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू।
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई।

दो०—सनकारे सेवक सकल, चले स्वामिरुख पाइ।
घर तरुतर सर बाग बन, बास बनायन्हि जाइ॥ १३४॥

सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेहबस अंग सिथिल तब।
सोहत दिये निषादहि लागू। जनु तनु धरे बिनय अनुरागू।
एहि बिधि भरत सेन सब संगा। दीख जाइ जगपावनि गंगा।
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मन मगन मिले जनु रामू।
करहिं प्रनाम नगर-नर-नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी।
करि मज्जनु माँगहिं कर जोरी। रामचंद्रपद प्रीति न थोरी।
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल-सुखद-सेवक-सुर-धेनु।
जोरि पानि बर मागउँ एहू। सीय-राम-पद सहज सनेहू।

दो०—एहि विधि मज्जन भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ ।
मातु नहानीं जानि सब, डेरा चले लेवाइ ॥ १३५ ॥
जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा । भरत सोधु सबही कर लीन्हा ।
सुरसेवा करि आयसु पाई । राममातु पहिं गे दोउ भाई ।
चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी । जननी सकल भरत सनमानी ।
भाइहि सौंपि मातुसेवकाई । आपु निषादहि लीन्ह बोलाई ।
चले सखा कर सोँ कर जोरे । सिथिल सरीर सनेहु न थोरे ।
पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ । नेकु नयन-मन-जरनि जुड़ाऊ ।
जहँ सिय राम लषन निसि सोये । कहत भरे जल लोचनकोये ।
भरतवचन सुनि भयउ बिषादू । तुरत तहाँ लेइ गयउ निषादू ।

दो०—जहँ सिंसुपा पुनीत तरु, रघुबर किय बिस्रामु ।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हे दंड प्रनामु ॥ १३६ ॥
कुस साथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई ।
चरन-रेख-रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ।
कनकबिंदु दुइ चारिक देखे । राखे सीस सीयसम लेखे ।
सजल बिलोचन हृदय गलानी । कहत सखा सन बचन सुबानी ।
श्रीहत सीयबिरह दुतिहीना । जथा अवध नरनारि मलीना ।
पिता जनक देउँ पटतर केही । करतल भोग जोग जग जेही ।
ससुर भानु-कुल-भानु भुआलू । जेहि सिहात अमरावतिपालू ।
प्राननाथ रघुनाथ गोसाईं । जो बड़ होत सो रामबड़ाई ।

दो०—पतिदेवता सु-तीय-मनि, सीय साथरी देखि ।
बिरहत हृदय न हहरि हर, पबि तेँ कठिन बिसेखि ॥ १३७ ॥
लालनजोग लखन लघु लोने । भे न भाइ अस अहहिं न होने ।
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे । सिय-रघु-बीरहिं प्रानपियारे ।
मृदुमूरति सुकुमार सुभाऊ । ताति बाउ तन लाग न काऊ ।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती । निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ।

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर । रूप सील सुख सब गुनसागर ।
पुरजन परिजन गुरु पितु माता । रामसुभाव सबहिं सुखदाता ।
बैरिउ रामबड़ाई करहीं । बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ।
सादर कोटि कोटि सत सेषा । करि न सकहिं प्रभु-गुन-गन-लेखा ।

दो०—सुखस्वरूप रघु-बंस-मनि, मंगल - मोद - निधान ।
ते सोवत कुस डासि महि, बिधिगति अति बलवान ॥१३८॥

राम सुना दुख कान न काऊ । जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ ।
पलक नयन फनिमनि जेहि भाँती । जोगवहिं जननि सकल दिन राती ।
ते अब फिरत बिपिन पदचारी । कंद - मूल - फल - फूल - अहारी ।
धिग कैकेइ अमंगलमूला । भइसि प्रान-प्रियतम-प्रतिकूला ।
मैं धिग धिग अघउदधि अभागी । सब उतपात भयउ जेहि लागी ।
कुलकलंकु करि सृजेउ बिधाता । साइँद्रोह मोहि कीन्ह कुमाता ।
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू । नाथ करिय कत बादि बिषादू ।
राम तुम्हहिं प्रिय तुम प्रिय रामहिं । यह निरजोसु दोसु बिधि बामहिं ।

छं०—बिधि बामकी करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी ।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रावरी ।
तुलसी न तुम्ह सोँ राम प्रीतम कहत हौँ सौँहें किये ।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिये धीरज हिये ॥

सो०—अंतरजामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन ।
चलिय करिय बिस्राम, यह बिचार दृढ़ आनि मन ॥१३९॥

सखाबचन सुनि उर धरि धीरा । बास चले सुमिरत रघुबीरा ।
यह सुधि पाइ नगर-नर-नारी । चले बिलोकन आरत भारी ।
परदछिना करि करहिं प्रनामा । देहिँ कैकेइहि खोरि निकामा ।
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं । बाम बिधातहि दूषन देहीं ।
एक सराहहि भरतसनेहू । कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू ।
निंदहिँ आपु सराहि निषादहि । को कहि सकइ बिमोह बिषादहि ।

एहि विधि राति लोगु सबु जागा । भा भिनुसारु गुदारा लागा ।
गुरुहिँ सुनाव चढ़ाइ सुहाई । नई नाव सब मातु चढ़ाई ।
दंड चारि महँ भा सब पारा । उतरि भरत तब सबहि सँभारा ।

दो०—प्रात क्रिया करि मातुपद, बंदि गुरुहि सिर नाइ ।
आगे किये निषादगन, दीन्हेउ कटक चलाइ ॥ १४० ॥

भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रवेसु प्रयाग ।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग ॥ १४१ ॥

झलका झलकत पायन्ह कैसे । पंकजकोस ओसकन जैसे ।
भरत पयादेहि आये आजू । भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ।
खबरि लीन्ह सब लोग नहाये । कीन्ह प्रनाम त्रिवेनिहि आये ।
सबिधि सितासित नीर नहाने । दिये दान महिसुर सनमाने ।
देखत स्यामल-धवल-हलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ।
सकल-काम-प्रद तीरथराऊ । बेदबिदित जग प्रगट प्रभाऊ ।
माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ।
अस जिय जानि सुजान सुदानी । सफल करहिँ जग जाचकबानी ।

दो०—अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदानु न आन ॥ १४२ ॥

प्रमुदित तीरथ-राज-निवासी । बैखानस बटु गृही उदासी ।
कहहिँ परसपर मिलि दस पाँचा । भरत सनेह सील सुचि साँचा ।
सुनत राम-गुन-ग्राम सुहाये । भरद्वाज मुनिवर पहिं आये ।
दंडप्रनाम करत मुनि देखे । मूरतिवंत भाग निज लेखे ।
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे । दीन्ह असीस कृतारथ कीन्हे ।
आसन दीन्ह नाइ सिरु बैठे । चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे ।
मुनि पूछब किछु यह बड़ सोचू । बोले रिषि लखि सील सँकोचू ।
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई । विधिकरतब पर किछु न बसाई ।

दो०—तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातुकरतूति।
तात कैकइहि दोष नहिँ, गई गिरा मतिधूति॥ १४३॥
करि प्रबोध मुनिवर कहेउ, अतिथि प्रेमप्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम, देहिँ लेहु करि छोहु॥ १४४॥

सुनि मुनिवचन भरत हिय सोचू। भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू।
जानि गरुइ गुरुगिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी।
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परमधरम यह नाथ हमारा।
भरतवचन मुनिवर मन भाये। सुचि सेवक सिष निकट बोलाये।
चाहिय कीन्ह भरतपहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई।
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाये। प्रमुदित निज निज काज सिधाये।
मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिय जस देवता।

दो०—चाहुर सपरिजन भरत कहँ, रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि-बिसमय-दायक बिभव, मुनिवर तपबल कीन्ह॥ १४५॥

मुनिप्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका।
सुखसमाज नहिँ जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिँ ज्ञानी।
आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहँग मृग नाना।
सुरभि फूल फल अमियसमाना। बिमलजलासय बिबिध बिधाना।
असन पान सुचि अमिय अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से।
सुरसुरभी सुरतरु सबही के। लखि अभिलाष सुरेस सची के।
रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी।
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरख बिसमयबस लोगा।

दो०—संपति चकई भरत चक, मुनिआयसु खेलवार।
तेहि निसि आस्रमपीँजरा, राखे भा भिनुसार॥ १४६॥

कीन्ह निमज्जन तीरथराजा। नाइ मुनिहिँ सिर सहित समाजा।
रिषिआयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाखी।
पथ-गति-कुसल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहि चित दीन्हे।

रामसखा कर दीन्हे लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू।
नहिँ पदत्रान सीस नहिँ छाया। प्रेम नेम व्रत धरम अमाया।
लपन-राम-सिय-पंथ-कहानी। पूछत सखहि कहत मृदु बानी।
राम-वास-थल-विटप बिलोके। उरअनुराग रहत नहि रोके।
देखि दसा सुर बरिषहिँ फूला। भइ मृदु महि मग मंगलमूला।

दो०—किये जाहिँ छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिँ जात ॥१४७॥

एहि बिधि भरत चले मग माहीं। दसा देखि मुनि सिद्धि सिहाहीं।
बीच वास करि जमुनहि आये। निरखि नीरु लोचन जल छाये।
जमुनतीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समयसम सबहिँ सुपासू।
रातिहिँ घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिँ न बरनी।
प्रात पार भये एकहि खेवा। तोषे रामसखा की सेवा।
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई।
आगे मुनि-बर-बाहन आछे। राजसमाज जाइ सब पाछे।
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे। भूषन बसन बेष सुठि सादे।
सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लपनु सीय रघुनाथा।
जहँ जहँ राम-वास-बिस्रामा। तहँ तहँ करहिँ सप्रेम प्रनामा।

दो०—चलत पयादेहि खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि, भरत सरिस को आजु ॥ १४८ ॥

निज गुन-सहित राम-गुन-गाथा। सुनत जाहिँ सुमिरत रघुनाथा।
तीरथ मुनि आस्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिँ करहिँ प्रनामा।
मनहीं मन माँगहि बर एहू। सीय-राम-पद-पदुम सनेहू।
मिलहि किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी।
करि प्रनामु पूछहि जेहि तेही। केहि बन लपनु राम बैदेही।
ते प्रभुसमाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनमफलु लहहीं।
जे जन कहहि कुसल हम देखे। ते प्रिय राम-लपन-सम लेखे।

यदि विधि बूझत सबहि सुयानी। सुनत राम बन-बास-कहानी।
दो०—तेहि बासर बसि प्रातही, चले सुमिरि रघुनाथ।
रामदरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ॥ १४६॥

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू।
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुखदाहू।
करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेह सुरा सब छाके।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन प्रेमबस बोलहिं।
रामसखा तेहि समय देखावा। सैलसिरोमनि सहज सुहावा।
जासु समीप सरित-पय तीरा। सीयसमेत बसहिँ दोउ बीरा।
देखि करहिँ सब दंडप्रनामा। कहि जय जानकिजीवन रामा।
प्रेममगन अस रामसमाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू।

दो०—भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख, अह-मम-मलिन-जनेषु॥ १५०॥

सकल सनेह सिथिल रघुबर के। गये कोस दुइ दिनकर ढरके।
जल थल देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवन रघु-नाथ-पिरीते।
उहाँ रामु रजनीअवसेखा। जागे सीय सपन अस देखा।
सहित समाज भरत जनु आये। नाथबियोग ताप तन ताये।
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी।
सुनि सियसपन भरे जल लोचन। भये सोचबस सोचबिमोचन।
लषन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।
अस कहि बंधुसमेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने।

छंद—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रम गये।
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरदसरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल॥ १५१॥

बहुरि सोच बस भे सियरवनू। कारन कवन भरतआगमनू।
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी।
सो सुनि रामहिँ भा अति सोचू। इत पितुवच उत बंधुसँकोचू।
भरतसुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभुचित हितथिति पावत नाहीं।
समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महँ साधु सयाने।
लषन लखेउ प्रभु-हृदय-खभारू। कहत समयसम नीति बिचारू।
बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवकसमय न ढीठ ढीठाईं।
तुम्ह सर्बज्ञ सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउं अनुगामी।
दो०—नाथ सुहृद सुठि सरलचित, सील-सनेह-निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान॥ १५२॥

बिषयी जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोहबस होहिँ जनाई।
भरत नीतिरत साधु सुजाना। प्रभु-पद-प्रेम सकल जग जाना।
तेऊ आजु राजपद पाई। चले धरममरजाद मेटाई।
कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी। जानि राम बनवास एकाकी।
करि कुमंत्र मन साजि समाजू। आये करइ अकंटक राजू।
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दल बटोरि दोउ भाई।
जौं जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ-बाजि-गजाली।
भरतहि दोष देइ को जाये। जग बौराइ राजपद पाये।
दो०—ससि गुरु-तिय-गामी, नहुष, चढ़ेउ भूमि-सुर-जान।
लोकबेद तें बिमुख भा, अधम न बेनसमान॥ १५३॥

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजपद दीन्ह कलंकू।
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ।
एक कीन्ह नहि भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई।
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी। समर सरोष राममुख पेखी।

पतना कहन नीतिरस भूला । रन-रस-बिटप पुलक मिस फूला ।
प्रभुपद बंदि सीसरज राखी । बोले सत्य सहज बल भाखी ।
अनुचित नाथ न मानब मोरा । भरत हमहिँ उपचार न थोरा ।
कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे । नाथ साथ धनु हाथ हमारे ।

दो०—छत्रि जाति रघु-कुल-जनम, रामअनुज जग जान ।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर, नीच को धूरिसमान ॥१५४॥

उठि कर जोरि रजायसु माँगा । मनहुँ बीररस सोवत जागा ।
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा । साजि सरासन सायक हाथा ।
आजु रामसेवक जसु लेऊँ । भरतहिँ समर सिखावन देऊँ ।
रामनिरादर कर फल पाई । सोवहु समरसेज दोउ भाई ।
आइ बना भल सकल समाजू । प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ।
जिमि करिनिकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ।
तैसेहि भरतहि सेनसमेता । सानुज निदरि निपातउँ खेता ।
जौं सहाय कर शंकर आई । तौ मारउँ रन रामदोहाई ।

दो०—अतिसरोष माखे लखन, लखि सुनि सपथ प्रवान ।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ॥ १५५ ॥

जग भयमगन गगन भइ बानी । लखन-बाहु-बल बिपुल बखानी ।
तात प्रतापप्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहारा ।
अनुचित उचित काज कछु होऊ । समुझि करिय भल कह सब कोऊ ।
सहसा करि पाछे पछिताहीं । कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ।
सुनि सुरबचन लखन सकुचाने । राम सीय सादर सनमाने ।
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब तेँ कठिन राजमद भाई ।
जो अँचवत माँतहिँ नृप तेई । नाहिन साधु सभा जेहि सेई ।
सुनहु लखन भल भरतसरीसा । बिधिप्रपंच महँ सुना न दीसा ।

दो०—भरतहि होइ न राजमद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ ॥ १५६ ॥

तिमिरतरुन तरनिहि मकु गिलई । गगन मगन मकु मेघहि मिलई ।
गोपद जल बूड़हिँ घटजोनी । सहज छमा बरु छाड़इ छोनी ।
मसकफूँक मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृपमद भरतहि भाई ।
लखन तुम्हार सपथ पितुआना । सुचि सुबंधु नहिँ भरतसमाना ।
सगुनखीर अवगुनजल ताता । मिलइ रचइ परपंच बिधाता ।
भरत हंस रबि-बंस-तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन-दोष-बिभागा ।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी । निज जस जगत कीन्हि उँजियारी ।
कहत भरत-गुन-सील-सुभाऊ । प्रेमपयोधि मगन रघुराऊ ।

दो० — सुनि रघुबरबानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु ।
सकल सराहत राम सोँ, प्रभु को कृपानिकेतु ॥ १५७ ॥

जौँ न होत जग जनम भरत को । सकल-धरम-धुरधरनि धरत को ।
कबि-कुल-अगम भरत-गुन-गाथा । को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ।
लखन राम सिय सुनि सुरबानी । अति सुख लहेउ न जाइ बखानी ।
इहाँ भरत सब सहित सहाये । मंदाकिनी पुनीत नहाये ।
सरितसमीप राखि सब लोगा । माँगि मातु-गुरु-सचिव-नियोगा ।
चले भरत जहँ सियरघुराई । साथ निषादनाथ लघु भाई ।
समुझि मातुकरतब सकुचाहीँ । करत कुतरक कोटि मन माहीँ ।
राम-लखन-सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहिँ तजि ठाऊँ ।

दो० — मातु मते महँ मानि मोहि, जो कछु कहहिँ सो थोर ।
अघअवगुन छमि आदरहिँ, समुझि आपनी ओर ॥ १५८ ॥

जौँ परिहरहिँ मलिन मन जानी । जौँ सनमानहिँ सेवक मानी ।
मोरे सरन राम की पनहीँ । राम सुस्वामि दोष सब जनहीँ ।
जग जसभाजन चातक मीना । नेम प्रेम निज निपुन नबीना ।
अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेह सिथिल सब गाता ।
फेरति मनहिँ मातुकृत खोरी । चलत भगतिबल धीरजधोरी ।
जब समुझत रघुनाथसुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ।

भरतदसा तेहि अवसर कैसी। जलप्रवाह जल-अलि-गति जैसी।
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू।

दो०—लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनाम बिषादु॥ १५६॥

सेवकबचन सत्य सब जाने। आस्रमनिकट जाइ नियराने।
सखासमेत मनोहर जोटा। लखेउ न लषन सघन बन ओटा।
भरत दीख प्रभुआस्रम पावन। सकल-सु-मंगल-सदन सुहावन।
करत प्रवेस मिटे दुखदावा। जनु जोगी परमारथ पावा।
देखे भरत लषन प्रभु आगे। पूछे बचन कहत अनुरागे।
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे। तून कसे कर सर धनु काँधे।
बेदी पर मुनि-साधु-समाजू। सीयसहित राजत रघुराजू।
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रतिकामा।
करकमलनि धनुसायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत।

दो०—लसत मंजु मुनि-मंडली, मध्य सीय रघुचंद।
ज्ञानसभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंद॥ १६०॥

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष-सोक-सुख-दुख-गन।
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं।
बचन सप्रेम लषन पहिचाने। करत प्रनाम भरत जिय जाने।
बंधुसनेह सरस एहि ओरा। इत साहिबसेवा बरजोरा।
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लषनमन की गति भनई।
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू।
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा।
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा।

दो०—बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिँ अपान॥ १६१॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबि-कुल-अगम करम मन बानी।

परम - प्रेम - पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई।
कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई।
कविहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा।
अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु विधि-हरि-हर को।
सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती। बाजु सुराग कि गाँडरताँती।
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी।
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे। बरपि प्रसून प्रसंसन लागे।

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि, केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम॥ १६२॥

भेंटेउ लषन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई।
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे।
सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय-पद-पदुम-परागा।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये। सिर करकमल परसि बैठाये।
सीय असीस दीन्हि मन माहीँ। मगन सनेह देहसुधि नाहीँ।
सब विधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता।
कोउ कछु कहइ न कोउ कछु पूछा। प्रेम भरा मन निज गति छूछा।
तेहि अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनाम करि।

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुरलोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आये बिकल बियोग॥ १६३॥

सीलसिंधु सुनि गुरु आगवनू। सियसमीप राखे रिपुदवनू।
चले सबेग राम तेहि काला। धीर - धरम - धुर दीनदयाला।
गुरुहि देखि सानुज अनुरागे। दंडप्रनाम करन प्रभु लागे।
मुनिवर धाइ लिये उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई।
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूर तेँ दंडप्रनामू।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।
रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहिँ सुर बरिसहिँ फूला।

एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठसम को जग माहीं।

दो०—जेहि लखि लषहुँ तें अधिक, मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीता - पति - भजन को, प्रगट प्रतापप्रभाउ॥ १६४॥

भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोषु।
अंब ईसआधीन जग, काहु न देइय दोषु॥ १६५॥

महिसुर मंत्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ।
पावन आस्रम गवनु किय, भरत लषन रघुनाथ॥ १६६॥

सीय आइ मुनि-बर-पग लागी। उचित असीस लही मनमाँगी।
गुरुपतिनिहिँ मुनितियन्ह समेता। मिली प्रेम कहि जाइ न जेता।
बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के।
सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदे नैन सहमि सुकुमारी।
परी बधिकबस मनहुँ मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली।
तिन्ह सिय निरखि निपट दुख पावा। सो सब सहिअ जो दैव सहावा।
जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील-नलिन लोचन भरि नीरा।
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई।

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिँ प्रेमबस, रहिअहु भरी सोहाग॥ १६७॥

बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहिँ कहेउ गुरु ग्यानी।
कहि जगगति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथगाथा।
नृप कर सुर-पुर-गवन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा।
मरनहेतु निज नेह बिचारी। भे अति बिकल धीर-धुर-धारी।
कुलिसकठोर सुनत कटुबानी। बिलपत लषन सीय सब रानी।
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू।
मुनिबर बहुरि राम समुझाये। सहित समाज सुरसरित न्हाये।
ब्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जल काहु न लीन्हा।

दो०—भोर भये रघुनंदनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा - भगति-समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह ॥ १६८ ॥

करि पितुक्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक-तम-तरनी।
सुद्ध भये दुइ बासर बीते। बोले गुरु सन राम पिरीते।
नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद- मूल - फल-अंबु-अहारी।
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता।
सब समेत पुर धारिय पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ।
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिय गुसाईं।
बोले मुनिवर बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी।
सुनहु राम सरबज्ञ सुजाना। धरम-नीति-गुन-ज्ञान-निधाना।

दो०—सब के उरअंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन-जननी-भरत-हित, होय सो कहिय उपाउ ॥ १६९ ॥

आरत कहहिँ बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपुन दाऊ।
सुनि मुनिबचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ।
सब कर हित रुख राउरि राखे। आयसु किये मुदित फुर भाखे।
प्रथम जो आयसु मो कहँ पोई। माथे मानि करउँ सिख सोई।
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं।
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाखा। भरत-सनेह - बिचार न राखा।
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत-भगति-बस भइ मति मोरी।
मोरे जान भरतरुचि राखी। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी।

दो०—भरतबिनय सादर सुनिय, करिय बिचार बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥ १७० ॥

गुरुअनुराग भरत पर देखी। रामहृदय आनंद बिसेखी।
भरतहिँ धरम-धुरं - धर जानी। निज सेवक तन-मानस - बानी।
बोले गुरु - आयसु - अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला।
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरतसम भाई।

जे गुरु-पद-अंबुज-अनुरागी। ते लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी।
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू।
लखि लघुबंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरतबड़ाई।
भरत कहहिं सोइ किये भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई।

दो०—तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोच तजि तात।
कृपासिंधु प्रियबंधु सन, कहहु हृदय कइ बात॥ १७१॥

सुनि मुनिबचन रामरुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई।
लखि अपने सिर सब छरुभारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू।
पुलकि सरीर सभा भये ठाढ़े। नीरजनयन नेहजल बाढ़े।
कहब मोर मुनि नाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहउँ मैं काहा।
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ।
मो पर कृपा सनेह बिसेखी। खेलत खुनस न कबहूँ देखी।
सिसुपन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।
मैं प्रभु कृपारीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही।

दो०—महूँ सनेह-सकोच-बस, सनमुख कहे न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन॥ १७२॥

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा।
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा।
मातु मंद मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली।
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक ताली।
सपनेहु दोस कलेस न काहू। मोर अभाग उदधिअवगाहू।
बिनु समुझे निज-अघ-परिपाकू। जारिउँ जाय जननि कहि काकू।
हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा।
गुरु गोसाइँ साहिब सियरामू। लागत मोहि नीक परिनामू।

दो०—साधु-सभा-गुरु-प्रभु-निकट, कहउँ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंच कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ॥ १७३॥

भूपतिमरन प्रेमपनु राखी । जननी कुमति जगत सब साखी ।
देखि न जाहिँ विकल महतारी । जरहिँ दुसह जर पुर-नर-नारी ।
महीं सकल अनरथ कर मूला । सो सुनि समुझि सहेउँ सब सूला ।
सुनि बनगवनु कीन्ह रघुनाथा । करि मुनिवेष लषन-सिय-साथा ।
बिनु पनिहिन्ह पयादेहि पाये । शंकर साखि रहेउँ एहि घाये ।
बहुर निहारि निषादसनेहू । कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू ।
अब सब आँखिन्ह देखेउँ आई । जियत जीव जड़ सबइ सहाई ।
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी । तजहिं विषमविष तामस तीछी ।

दो०—तेइ रघुनंदन लषन सिय, अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावइ काहि ॥ १७४ ॥

सुनि अति बिकल भरत-बर-बानी । आरति - प्रीति-बिनय-नय-सानी ।
सोकमगन सब सभा खभारू । मनहुँ कमलबन परेउ तुसारू ।
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी । भरतप्रबोध कीन्ह मुनि ज्ञानी ।
बोले उचित बचन रघुनंदू । दिन-कर - कुल - कैरव-बन-चंदू ।
तात जाय जिन करहु गलानी । ईसअधीन जीवगति जानी ।
तीनि काल त्रिभुवन मत मोरे । पुन्यसलोक तात तर तोरे ।
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोक - परलोक नसाई ।
दोष देहिँ जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुरु-साधु-सभा नहिं सेई ।

दो०—मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजस परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ॥ १७५ ॥

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ।
तात कुतरक करहु जनि जाये । बैर प्रेम नहिँ दुरइ दुराये ।
मुनि गुनि निकट बिहँग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ।
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुषतनु गुन-ज्ञान-निधाना ।
तात तुम्हहिँ मैं जानउँ नीके । करउँ काह असमंजस जी के ।
राखेउ रामु सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी ।

तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ।
ता पर गुरु मोहि आयसु दीन्हा । अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ।

दो०—मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करउँ सोइ आजु ।
सत्य-संध-रघुबर-बचन, सुनि भा सुखी समाजु ॥ १७६ ॥
कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ ।
करि प्रनाम बोले भरत, जोरि जल-ज-जुग-हाथ ॥ १७७ ॥

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी । कृपा-अंबु-निधि अंतरजामी ।
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला । मिटी मलिन मनकलपित सूला ।
अपडर डरेउँ न सोच समूले । रबिहि न दोप देव दिसि भूले ।
मोर अभाग मातकुटिलाई । बिधिगति बिपम काल कठिनाई ।
पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला । प्रनतपाल पन आपन पाला ।
यह नइ रीति न राउरि होई । लोकहु बेद बिदित नहिँ गोई ।
जग अनभल भल एक गोसाईं । कहिय होइ भल कासु भलाई ।
देव देव-तरु-सरिस सुभाऊ । सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ।

दो०—जाइ निकट पहचानि तरु, छाँह समनि सब सोच ।
माँगत अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच ॥ १७८ ॥

लखि सब बिधि गुरु-स्वामि-सनेहू । मिटेउ छोभ नहिँ मन संदेहू ।
अब करुनाकर कीजिय सोई । जन हित प्रभुचित छोभ न होई ।
जो सेवक साहिबहिँ सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ।
सेवकहित साहिबसेवकाई । करइ सकल सुख लोभ बिहाई ।
स्वारथ नाथ फिरे सबही का । किये रजाइ कोटि बिधि नीका ।
यह स्वारथ - परमारथ - सारू । सकल सुकृत फल सुगति सिँगारू ।
देव एक बिनती सुनि मोरी । उचित होइ तस करब बहोरी ।
तिलकसमाजु साजि सब आना । करिय सुफल प्रभु जौं मन माना ।

दो०—सानुज पठइय मोहिँ बन, कीजिय सबहिँ सनाथ ।
नतरु फेरियहि बंधु दोउ, नाथ चलउँ मैं साथ ॥ १७९ ॥

ज तरु जाहिँ बन तीनिउ भाई । बहुरिय सीयसहित रघुराई ।
जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुनासागर कीजिय सोई ।
देव दीन्ह सब मोहि सिर भारू । मोरे नीति न धरम बिचारू ।
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू । रहत न आरत के चित चेतू ।
उतर देइ सुनि स्वामिरजाई । सो सेवक लखि लाज लजाई ।
अस मैं अवगुन-उदधि-अगाधू । स्वामि सनेह सराहत साधू ।
अब कृपाल मोहि सो मत भावा । सकुच स्वामि मन जाइ न पावा ।
प्रभु-पद-सपथ कहउँ सतिभाऊ । जग-मंगल-हित एक उपाऊ ।

दो०—प्रभु प्रसन्नमन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देब ।
सो सिर धरि धरि करिहि सब, मिटिहि अनट अवरेब ॥ १८० ॥
प्रेममगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु ।
सहित सभा संभ्रम उठेउ, रवि-कुल-कमल-दिनेसु ॥ १८१ ॥

भाइ-सचिव-गुरु-पुरजन-साथा । आगे गवन कीन्ह रघुनाथा ।
गिरिवर दीख जनकपति जबहीं । करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं ।
राम-दरस-लालसा-उछाहू । पथस्रम लेस कलेस न काहू ।
मन तहँ जहँ रघुबरबैदेही । बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही ।
आवत जनक चले एहि भाँती । सहित समाज प्रेम मति माँती ।
आये निकट देखि अनुरागे । सादर मिलन परसपर लागे ।
लगे जनक मुनि-जन-पद बंदन । रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन ।
भाइन्ह सहित राम मिलि राजहिँ । चले लेवाइ समेत समाजहिँ ।

दो०—आस्रम सागर साँतरस, पूरन पावन पाथ ।
सेन मनहुँ करुनासरित, लिये जाहिँ रघुनाथ ॥ १८२ ॥

बोरति ज्ञान बिराग करारे । बचन ससोक मिलत नद नारे ।
सोच उसास समीरतरंगा । धीरज तट-तरु-बर कर भंगा ।
बिषम बिषाद तोरावति धारा । भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा ।
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा । सकहिँ न खेइ एक नहिँ आवा ।

बनचर कोल किरात बेचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे।
आस्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई।
सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ज्ञान न धीरज लाजा।
भूप-रूप-गुन-सील सराही। रोवहिं सोकसिंधु अवगाही।

छंद—अवगाहि सोकसमुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा।
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की।

सो०—किये अमित उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरज धरिअ नरेस, कहेउ बसिष्ट बिदेह सन॥ १८३॥

सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरज भारी।
कुसमउ देखि सनेह सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा।
सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल-गुन-गन जग जोनी।
भरतबिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला।
करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे।
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा।
हिय सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुखपंकज आई।
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरतभारती मंजु मराली।

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि, सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराजु॥ १८४॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परमहित अंतरजामी।
सरल सुसाहिब सील निधानू। प्रनतपाल सर्बज्ञ सुजानू।
समरथ सरनागत हितकारी। गुनगाहक अवगुन-अघ-हारी।
स्वामि गोसाइँहिँ सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं साइँ दोहाई।
प्रभु-पितु-बचन मोहबस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली।
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमरपद माहुर मीचू।

रामरजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं।
सो मैं सब विधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई।

दो०—कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषनसरिस, सुजस चारु चहुँ ओर॥ १८५॥

राउरिरीति सुवानि बड़ाई। जगत विदित निगमागम गाई।
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी।
तेउ सुनि सरन सामुहे आये। सकृत प्रनाम किये अपनाये।
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधुसमाज बखाने।
को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाजि साज सब साजी।
निज करतूति न समुझिय सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने।
सो गोसाइँ नहिँ दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी।
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुनगति नट पाठक आधीना।

दो०—यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपाल विनु पालिहइ, विरदावलि वरजोर॥ १८६॥

सोक सनेह कि बाल सुभाये। आयउँ लाइ रजायसु बायेँ।
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा।
देखेउँ पाय सु-मंगल-मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला।
बड़ समाज विलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू।
कृपा अनुग्रह अंग अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई।
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभाय भलाई।
नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच विहाई।
अविनय विनय जथारुचि वानी। छमहि देव अति आरति जानी।

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बडि खोरि।
आयसु देइय देव अब, सबइ सुधारिय मोरि॥ १८७॥

प्रभु-पद-पदुम-पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुखसीवँ सुहाई।
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की।

सहज सनेह स्वामिसेवकाई। स्वारथ छल फल चारि विहाई।
अज्ञासम न सुसाहिबसेवा। सो प्रसाद जन पावइ देवा।
अस कहि प्रेमविबस भये भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी।
प्रभु-पद-कमल गहे अकुलाई। समउ सनेह न सो कहि जाई।
कृपासिंधु सनमानि सुवानी। बैठाये समीप गहि पानी।
भरतबिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ।
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की।
धरमधुरीन धीर नयनागर। सत्य सनेह सील सुख सागर।
देस काल लखि समय समाजू। नीति-प्रीति-पालक रघुराजू।
बोले बचन बानि सरबस से। हित परिनाम सुनत ससिरस से।
तात भरत तुम्ह धरमधुरीना। लोक बेद बिद परम-प्रबीना।

दो०—करम बचन मानस विमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरुसमाज लघु-बंधु-गुन, कुसमय किमि कहि जात॥ १८८॥

जानहु तात तरनि-कुल-रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती।
समउ समाज लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की।
तुम्हहिं विदित सबही कर करमू। आपन मोर परमहित धरमू।
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा।
तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरु-कुल-कृपा सँभारी।
न तरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिं सहित सब होत खुआरू।
जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू।
तस उतपात तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा।

दो०—रामकाज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुरुप्रभाउ पालिहि सबहिं, भल होइहि परिनाम॥ १८९॥

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरुप्रसाद रखवारा।
मातु-पिता-गुरु-स्वामि-निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू।
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनि-कुल-पालक होहू।

साधक एक सकल सिध देनी । कीरति सुगति भूतिमय बेनी ।
सो विचार सहि संकट भारी । करहु प्रजा परिवार सुखारी ।
बाढ़ी बिपति सबहि मोहि भाई । तुम्हहिं अवधिभरि बड़ि कठिनाई ।
जानि तुम्हहिं मृदु कहहुँ कठोरा । कुसमय तात न अनुचित मोरा ।
होहिं कुठाय सुबंधु सहाये । ओड़ियहि हाथ असनि के घाये ।

दो०—सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोइ ॥ ३९० ॥

सभा सकल सुनि रघुबर बानी । प्रेम-पयोधि-अमिय जनु सानी ।
सिथिल समाज सनेह समाधी । देखि दसा चुप सारद साधी ।
भरतहिं भयउ परम संतोषू । सनमुख स्वामि बिमुख दुखदोषू ।
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू । भा जनु गूँगेहु गिराप्रसादू ।
कीन्ह सप्रेम प्रणाम बहोरी । बोले पानिपंकरुह जोरी ।
नाथ भयउ सुख साथ गये को । लेहउँ लाहु जग जनम भये को ।
अब कृपाल जस आयुस होई । करउँ सीस धरि सादर सोई ।
सो अवलंब देव मोहिं देई । अवधि पारु पावउँ जेहि सेई ।

दो०—देव देवअभिषेक हित, गुरु अनुसासन पाइ ।
आनेउँ सब तीरथसलिल, तेहि कहँ काह रजाइ ॥ ३९१ ॥

एक मनोरथ बड़ मन माहीं । समय सकोच जात कहि नाहीं ।
कहहु तात प्रभुआयुस पाई । बोले बानि सनेह सहाई ।
चित्रकूट मुनि थल तीरथ बन । खग मृग सरि सर निर्झर गिरिगन ।
प्रभु-पद-अंकित अवनि बिसेखी । आयसु होइ त आवउँ देखी ।
अवसि अत्रिआयुस सिर धरहू । तात बिगत भय कानन चरहू ।
मुनिप्रसाद बन मंगलदाता । पावन परम सुहावन भ्राता ।
रिषिनायक जहँ आयसु देहीं । राखेहु तीरथजल थल तेही ।
सुनि प्रभु बचन भरत सुख पावा । मुनि-पद-कमल मुदित सिर नावा ।

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सकूप॥
राखिय तीरथ तोय तहँ, पावन अमिय अनूप॥ १६२॥
देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरिहर सुजस, गयउ दिवस भइ साँझ॥१६३॥

भोर न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुतिराजू॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं। राम कृपालु कहत सकुचाहीं॥
गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न रामसम स्वामि सँकोची॥
भरत सुजान रामरुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी॥
मोहि लगि सबहिं सहेउ संतापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भरि जाई॥

दो०—जेहि उपाय पुनि पाय जन, देखय दीनदयाल।
सो सिख देइय अवधि लगि, कोसलपाल कृपाल॥ १६४॥

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाईं॥
राउर बदि भल भव-दुख-दाहू। प्रभु बिनु बादि परम-पद-लाहू॥
स्वामि सुजान जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रनत पालु पालहिं सब काहू। देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू॥
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किये बिचारु न सोच खरो सो॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिल कीन्ह ढीठ हठि मोहू॥
यह बड़ दोष दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइय अनुगामी॥
भरत बिनय सुनि सबहि प्रसंसी। खीर-नीर-बिबरन-गति हंसी॥

दो०—दीनबंधु सुनि बंधु के, बचन दीन छलहीन।
देस-काल-अवसर-सरिस, बोले राम प्रबीन॥ १६५॥

तात तुम्हारि मोर परिजन की। चिंता गुरु हिं नृपहिं घर बन की॥
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू। हमहिँ तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू॥

मोर तुम्हार परम पुरुषारथ । स्वारथ सुजस धरम परमारथ ।
पितुआयसु पालिय दुहुँ भाई । लोक बेद भल भूप भलाई ।
गुरु-पितु-मातु-स्वामि-सिख पाले । चलेहु कु-मग-पग परहिं न खाले ।
अस बिचारि सब सोच बिहाई । पालहु अवध अवधि भरि जाई ।
देस कोस पुरजन परिवारू । गुरुपद रजहिं लाग छरुभारू ।
तुम्ह मुनि-मातु-सचिव-सिख मानी । पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ।

दो०—मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कहँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥ १८६ ॥

राज-धरम-सरबसु एतनोई । जिमि मन माँह मनोरथ गोई ।
बंधुप्रबोध कीन्ह बहु भाँती । बिनु अधार मन तोष न साँती ।
भरत सील गुरु सचिव समाजू । सकुच सनेह बिबस रघुराजू ।
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही । सादर भरत सीस धरि लीन्ही ।
चरनपीठ करुनानिधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ।
संपुट भरतसनेह रतन के । आखर जुग जनु जीवजतन के ।
कुलकपाट कर कुसल करम के । बिमलनयन सेवा-सु-धरम के ।
भरत मुदित अवलंब लहे तें । अस सुख जस सिय राम रहे तें ।

दो०—माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिये उर लाइ ।
लोग उचाटे अमरपति,कुटिल कुअवसर पाइ ॥ १८७ ॥

भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो । राम-प्रेम-रस कहि न परत सो ।
तन मन बचन उमग अनुरागा । धीर-धुरं-धर धीरज त्यागा ।
बारिज लोचन मोचत बारी । देखि दसा सुर सभा दुखारी ।
भेंटि भरत रघुबर समुझाये । पुनि रिपुदवन हरषि हिय लाये ।
सेवक सचिव-भरत-रुख पाई । निज निज काज लगे सब जाई ।
सुनि दारुनदुख दुहूँ समाजा । लगे चलन के साजन साजा ।
प्रभु-पद-पदुम बंदि दोउ भाई । चले सीस धरि रामरजाई ।
मुनि तापस बन देव निहोरी । सब सनमानि बहोरि बहोरी ।

दो०—लषनहिँ भेँटि प्रनाम करि, सिर धरि सिय-पद-धूरि ।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल-सुमंगल-मूरि ॥ १९८ ॥
भरत-मातु-पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेँटि ।
बिदा कीन्हि सजि पालकी, सकुच सोच सब मेँटि ॥ १९९ ॥

गुरु-गुरुतिय-पद बंदि प्रभु, सीता लषन समेत ।
फिरे हरष-बिसमय सहित, आये परननिकेत ॥ २०० ॥

सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परनकुटीर ।
भगति ग्यान बैराग जनु, सोहत धरे सरीर ॥ २०१ ॥

मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू । रामबिरह सब साज बिहालू ।
प्रभु-गुरु-ग्राम गुनत मन माहीं । सब चुपचाप चले मग जाहीं ।
जमुना उतरि पार सब भयऊ । सो बासर बिनु भोजन गयऊ ।
उतरि देवसरि दूसर बासू । रामसखा सब कीन्ह सुपासू ।
सई उतरि गोमती नहाये । चौथे दिवस अवधपुर आये ।
जनक रहे पुर बासर चारी । राज काज सब साज सँभारी ।
सौंपि सचिव गुरु भरतहि राजू । तिरहुति चले साजि सब साजू ।
नगर-नारि-नर गुरु सिख मानी । बसे सुखेन राम-रज-धानी ।

दो०—रामदरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास ।
तजि तजि भूषन भोग सब, जियत अवधि की आस ॥२०२॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे । निज निज काज पाइ सिख ओधे ।
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई । सौंपी सकल मातुसेवकाई ।
परिजन पुरजन प्रजा बोलाये । समाधान करि सुबस बसाये ।
सानुज गे गुरुगेह बहोरी । करि दंडवत कहत कर जोरी ।
आयसु होइ त रहउँ सनेमा । बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा ।
समुझब कहब करब तुम्ह जोई । धरमसारु जग होइहि सोई ।
राममातु गुरुपद सिरु नाई । प्रभु - पद - पीठ - रजायसु पाई ।
नंदिगाँव करि परनकुटीरा । कीन्ह निवास धरम-धुर-धीरा ।

दो०—नित पूजत प्रभुपावरी, प्रीति न हृदय समाति।
मॉंगि मॉंगि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति॥ २०३॥

अरण्य कांड।

सो०—उमा रामगुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिँ विरति।
पावहिँ मोह विमूढ़, जे हरिविमुख न धरमरति ॥ १ ॥

पुर-नर-भरत-प्रीति मैं गाई। मतिअनुरूप अनूप सुहाई।
अब प्रभुचरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर-नर-मुनिभावन।
एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निज कर भूपन राम बनाये।
सीतहि पहिराये प्रभु सादर। बैठे फटिकसिला पर सुंदर।
सुर-पति-सुत धरि वायस वेखा। सठ चाहत रघु-पति-बल देखा।
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा-मंद-मति पावन चाहा।
सीताचरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा।
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक-धनुष-सायक संधाना।

दो०—अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छल, मूरख अवगुनगेह ॥ २ ॥

प्रेरितमंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि वायस भय पावा।
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। रामविमुख राखा तेहि नाहीं।
भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्रभय रिपि दुर्वासा।
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा स्रमित व्याकुल भय सोका।
काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही।
मातु मृत्यु पितु समनसमाना। सुधा होइ विप सुनु हरिजाना।
मित्र करइ सतरिपु कै करनी। ता कहँ विबुधनदी बैतरनी।
सब जग तेहि अनलहु तेँ ताता। जो रघु-बीर-विमुख सुनु भ्राता।

दो०—जिम जिम भाजत सक्रसुत, व्याकुल अतिदुखदीन।
तिम तिम धावत रामसर, पाछे परम प्रवीन ॥ ३ ॥

नारद देखा विकल जयंता। लागि दया कोमलचित संता।

पठवा तुरत राम पहिँ ताही । कहेसि पुकार प्रनतहित पाही ।
आतुर सभय गहेसि पद जाई । त्राहि त्राहि दयाल रघुराई ।
अ-तुलित-बल-अतुलित-प्रभुताई । मैं मतिमंद जानि नहिँ पाई ।
निज कृत करमजनित फल पायउँ । अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउं ।
सुनि कृपाल अति-आरत-बानी । एक नयन करि तजा भवानी ।

सो०—कीन्ह मोहबस द्रोह, जद्यपि तेहि कर बध उचित ।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह, को कृपाल रघु-बीर-सम ॥ ४ ॥

रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किये स्रुति सुधासमाना ।
बहुरि राम अस मन अनुमाना । होइहि भीर सबहिं मोहि जाना ।
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई । सीतासहित चले दोउ भाई ।
अत्रि के आस्रम जब प्रभु गयऊ । सुनत महामुनि हरषित भयऊ ।
पुलकित गात अत्रि उठि धाये । देखि रामु आतुर चलि आये ।
करत दंडवत मुनि उर लाये । प्रेमबारि दोउ जन अन्हवाये ।
देखि रामछबि नयन जुड़ाने । सादर निज आस्रम तब आने ।
करि पूजा कहि बचन सुहाये । दिये मूल फल प्रभु मन भाये ।

दो० – बिनती करि मुनि नाइ सिरु, कह करि जोरि बहोरि ।
चरनसरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजइ मति मोरि ॥ ५ ॥

अनसूया के पद गहि सीता । मिली बहोरि सुसील बिनीता ।
रिषि-पतिनी-मन सुख अधिकाई । आसिष देइ निकट बैठाई ।
दिव्य बसन भूषन पहिराये । जे नित नूतन अमल सुहाये ।
कह रिषिवधू सरल मृदुबानी । नारिधरम कछु ब्याज बखानी ।
मातु–पिता–भ्राता–हित–कारी । मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ।
अमितदानि भर्त्ता बैदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ।
धीरजु धरम मित्र अरु नारी । आपदकाल परखियहि चारी ।
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ।
ऐसेहु पति कर किये अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ।

एकइ धरम एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा।
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं।

दो०—उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहउँ समुझाइ।
आगे सुनहिँ ते भव तरहिँ, सुनहु सीय चित लाइ॥ ६॥

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।
धरम बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्टतिय स्रुति अस कहई।
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।
पतिबंचक पर-पति-रति करई। रौरव नरक कलप सत परई।
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी।
बिनु स्रम नारि परम गति लहई। पति-ब्रत-धरम छाड़ि छल गहई।
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई।

सो०—सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत स्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥ ७॥
सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिब्रत करहिँ।
तोहि प्रानप्रिय राम, कहेउँ कथा संसारहित॥ ८॥

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा।
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना।
मुनि-पद-कमल नाइ करि सीसा। चले बनहिँ सुर-नर-मुनि-ईसा।
आगे राम अनुज पुनि पाछे। मुनि-बर-बेष बने अति आछे।
उभय बीच सिय सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिँ बर बाटा।
जहँ जहँ जाहिँ देव रघुराया। करहिँ मेघ तहँ तहँ नभछाया।
पुनि आये जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा।

दो०—देखि राम-मुख-पंकज, मुनि-बर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जनम सरभंग॥ ९॥

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला । संकर-मानस-राज-मराला ।
जात रहेउँ बिरंचि के धामा । सुनेउँ स्रवन बन अइहहिं रामा ।
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ।
नाथ सकल साधन मैं हीना । कीन्ही कृपा जानि जन दीना ।
सो कछु देव न मोहि निहोरा । निज पन राखेहु जन-मन-चोरा ।
तब लगि रहहु दीनहित लागी । जब लगि मिलउँ तुम्हहिं तनु त्यागी ।
जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा । प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा ।
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा । बैठे हृदय छाड़ि सब संगा ।

दो०—सीता-अनुज-समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुनरूप श्रीराम ॥ १० ॥

अस कहि जोगअगिनि तनु जारा । रामकृपा बैकुंठ सिधारा ।
ता तें मुनि हरिलीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगतिबर लयऊ ।
रिषिनिकाय मुनि-बर-गति देखी । सुखी भये निज हृदय बिसेखी ।
अस्तुति करहिं सकल मुनिबृंदा । जयति प्रनतहित करुनाकंदा ।
पुनि रघुनाथ चले बन आगे । मुनि-बर-बृंद बिपुल सँग लागे ।
अस्थिसमूह देखि रघुराया । पूछा मुनिन्ह लागि अति दाया ।
जानतहू पूछिय कस स्वामी । सबदरसी तुम्ह अंतरजामी ।
निसि-चर-निकर सकल मुनि खाये । सुनि रघुनाथ नयन जल छाये ।

दो०—निसि-चर-हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आस्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥ ११ ॥

मुनि अगस्त्य कर सिष्य सुजाना । नाम सुतीच्छन रति भगवाना ।
मन-क्रम-बचन राम-पद-सेवक । सपनेहु आन भरोस न देवक ।
प्रभुआगवनु स्रवन सुनि पावा । करत मनोरथ आतुर धावा ।
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी । कहि न जाइ सो दसा भवानी ।
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा । को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ।
कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ।

अविरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहिँ तरुओट लुकाई।
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भवभीरा।
मुनि मग माँझ अचल होइ वैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा।
तब रघुनाथ निकट चलि आये। देखि दसा निज जन मन भाये।
मुनिहिँ राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यानजनित सुख पावा।
भूपरूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुजरूप देखावा।
मुनि अकुलाइ उठा पुनि कैसे। बिकल हीनमनि फनिवर जैसे।
आगे देखि रामतनु स्यामा। सीता-अनुज-सहित सुखधामा।
परउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेममगन मुनिवर बड़भागी।
भुजबिसाल गहि लिये उठाई। परमप्रीति राखे उर लाई॥
मुनिहिँ मिलत अस सोह कृपाला। कनकतरुहि जनु भेंट तमाला।
रामबदन बिलोकि मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा।

दो०—तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहिँ बार।
निज आस्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार॥ १२॥

अनुज-जानकी-सहित प्रभु, चाप-बान-धर राम।
मम हियगगन इंदु इव, बसहु सदा निःकाम॥ १३॥

एवमस्तु कहि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा।
बहुत दिवस गुरुदरसन पाये। भये मोहिँ एहि आश्रम आये।
अब प्रभु संग जाउँ गुरु पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं।
देखि कृपानिधि मुनिचतुराई। लिये संग बिहँसे दोउ भाई।
पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनिआस्रम पहुँचे सुरभूपा।
तुरत सुतीच्छन गुरु पहिँ गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ।
नाथ कोसलाधीसकुमारा। आये मिलन जगतआधारा।
राम अनुज समेत वैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही।
सुनत अगस्त तुरत उठि धाये। हरि बिलोकि लोचन जल छाये।
मुन-पद-कमल परे दोउ भाई। रिषि अति प्रीति लिये उर लाई।

सादर कुसल पूछि मुनि ज्ञानी । आसन पर बैठारे आनी ।
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा । मोहि सम भागवंत नहि दूजा ।
जहँ लगि रहे अपर मुनिवृंदा । हरषे सब विलोकि सुखकंदा ।

दो०—मुनिसमूह महँ बैठे, सनमुख सबका ओर ।
सरदइंदु तन चितवत, मानहुँ निकर चकोर ॥ १४ ॥

तब रघुवीर कहा मुनि पाहीं । तुम्ह सन प्रभु दुराउ कछु नाहीं ।
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयऊँ । ता तें तात न कहि समुझाऊँ ।
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार मारउँ मुनिद्रोही ।
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभुबानी । पूछेहु नाथ मोहि का जानी ।
तुम्हरेइ भजनप्रभाव अघारी । जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी ।
ऊमरितरु विसाल तव माया । फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ।
जीव चराचर जंतुसमाना । भीतर बसहिँ न जानहिँ आना ।
ते फलभच्छक कठिन कराला । तव भय डरत सदा सोउ काला ।
ते तुम्ह सकल लोकपति साईं । पूछेहु मोहि मनुज की नाईं ।
संतत दासन्ह देहु बड़ाई । ता तें मोहि पूछेहु रघुराई ।
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ । पावन पंचवटी तेहि नाऊँ ।
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू । उग्र साप मुनिवर कै हरहु ।
बास करहु तहँ रघु-कुल-राया । कीजिय सकल मुनिन्ह पर दाया ।
चले राम मुनि आयसु पाई । तुरतहिँ पंचवटी नियराई ।

दो०—गीधराज सोँ भेँट भइ, बहु बिधि प्रीति दढ़ाइ ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परनगृह छाइ ॥ १५ ॥

जब तेँ राम कीन्ह तहँ बासा । सुखी भये मुनि बीती त्रासा ।
गिरि बन नदी ताल छबि छाये । दिन दिन प्रति अति होहिँ सुहाये ।
खग-मृग-बृंद अनंदित रहहीं । मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं ।
सो बन बरनि न सक अहिराजा । जहाँ प्रगट रघुवीर बिराजा ।
बसत गये तहँ कछु दिन बीती । कहत विराग ज्ञान गुन नीती ।

सूपनखा रावन कै बहिनी । दुष्टहृदय दारुन जसि अहिनी ।
पंचवटी सो गइ एक बारा । देखि विकल भइ जुगल कुमारा ।
भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ।
होइ विकल सक मनहिँ न रोकी । जिमि रविमनि द्रव रबिहिँ बिलोकी ।
रुचिर रूप धरि प्रभु पहिँ जाई । बोली बचन बहुत मुसुकाई ।
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ।
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं । देखिउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं ।
ता तेँ अब लगि रहिउँ कुमारी । मन माना कछु तुम्हहिँ निहारी ।
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता । अहइ कुमार मोर लघु भ्राता ।
गइ लछिमन रिपुभगिनी जानी । प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ।
सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा । पराधीन नहिँ तोर सुपासा ।
प्रभु समर्थ कोसल-पुर-राजा । जो कछु करहिँ उन्हहिँ सब छाजा ।
सेवक सुख चह मान भिखारी । ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी ।
लोभी जसु चह चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ।
पुनि फिरि राम निकट सो आई । प्रभु लछिमन पहिँ बहुरि पठाई ।
लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तृन तोरि लाज परिहरई ।
तब खिसिआनि राम पहिँ गई । रूप भयंकर प्रगटत भई ।
सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सैन बुझाई ।

दो॰—लछिमन अति लाघव सोँ, नाक कान बिनु कीन्हि ।
ता के कर रावन कहँ, मनहुँ चुनौती दीन्हि ॥ १६ ॥

नाक कान बिनु भइ बिकरारा । जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ।
खरदूषन पहिँ गई बिलपाता । धिग धिग तव बल पौरुष भ्राता ।
तेहि पूछा सब कहेसि बुझाई । जातुधान सुनि सेन बनाई ।
धाए निसिचर बरनबरूथा । जनु सपच्छ कज्जल-गिरि-जूथा ।
नाना बाहन नानाकारा । नानायुधधर घोर अपारा ।
सूपनखा आगे करि लीन्ही । असुभरूप स्रुति-नासा-हीनी ।

धूरि पूरि नभमंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा।
लेइ जानकिहि जाहु गिरिकंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर।
रहेहु सजुग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर-धनुपानी।
देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा।

छं०—कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जटजूट बाँधत सोह क्यौं।
मरकत सैल पर लरत दामिनि कोटि सौं जुग भुजग ज्यौं।
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गज-राज-घटा निहारि कै॥

सो०—आइ गये बगमेल, धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल, बालरबिहिँ घेरत दनुज॥ १७॥

दो०—सावधान होइ धाये, जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर, अस्त्र सस्त्र बहु भाँति॥ १८॥
तिन्ह के आयुध तिल सम, करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन स्रवन लगि, पुनि छाड़े निज तीर॥ १९॥

तोमर—तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥
अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर॥
भये क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन तें जाइ॥
तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख तें करहिँ प्रहार॥
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥
छाड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥
उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कु-धर-समान॥
भट कटत तन सतखंड। पुनि उठत करि पाखंड॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥

खग कंक काक सृगाल । कटकटहिं कठिन कराल ॥
छंद—रघु - बीर-बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा ।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु धरु करहिं भयकर गिरा ।
मारे पछारे उर विदारे विपुल भट कहँरत परे ।
अवलोकि निज दल विकट भट तिसिरादि खर दूपन फिरे ॥
सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहिं बारहीं ।
करि कोप श्री - रघु - बीर पर अगनित निसाचर डारहीं ।
प्रभु निमिष महुँ रिपुसर निवारि प्रचारि डारे सायका ।
दस दस विसिख उर माँझ मारे सकल निसि-चर-नायक ॥
महि परत पुनि उठि भिरत मरत न करत माया अति घनी ।
सुर डरत चौदहसहस प्रेत विलोकि एक अवधधनी ।
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यौ ।
देखहिँ परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्‌यौ ॥

दो०—राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिँ पद निर्वान ।
करि उपाय रिपु मारे, छन महुँ कृपानिधान ॥ २० ॥

जब रघुनाथ समर रिपु जीते । सुर नर मुनि सब के भय बीते ।
तब लछिमनु सीतहि लेइ आये । प्रभु पद परत हरपि उर लाये ।
सीता चितव स्याम मृदु गाता । परम प्रेम लोचन न अघाता ।
धुआँ देखि खरदूपन केरा । जाइ सुपनखा रावनु प्रेरा ।
बोली वचन क्रोध करि भारी । देस कोस कै सुरति बिसारी ।
करसि पान सोवसि दिनु राती । सुधि नहि तव सिर पर आराती ।
राजुनीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ।
विद्या बिनु विवेक उपजाये । स्रम फल पढ़े किये अरु पाये ।
संग तें जती कुमंत्र तें राजा । मान तें ज्ञान पान तें लाजा ।
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी । नासहिँ बेगि नीति असि सुनी ।

सो०—रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि।
अस कहि विविध विलाप, करि लागी रोदन करन ॥ २१ ॥

दो०—सभा माँझ परि व्याकुल, बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जियत दसकंधर, मोरि कि असि गति होइ ॥ २२ ॥
सूपनखहि समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयेउ भवन अति सोच-बस, नींद परइ नहि राति ॥ २३ ॥

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं।
खरदूषन मोहिं सम बलवंता। तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवंता।
सुररंजन भंजन महिभारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।
तौ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभुसर प्रान तजे भव तरऊँ।
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा।
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ।
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथरत नीचा।
नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई।
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी।

दो०—करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयहु तात ॥ २४ ॥

दसमुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित अभिमान अभागे।
होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनउँ नृपनारी।
तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चरा-चर-ईसा।
ता सों तात बयरु नहिं कीजै। मारे मरिय जिआये जीजै।
मुनिमख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा।
सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किये भल नाहीं।
भइ मति कीट भृंग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई।
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहिं बिरोधि न आइहि पूरा।

दो०—जेहि ताड़का सुबाहु हति, खंडेउ हर कोदंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ, मनुज कि अस बरिबंड ॥ २५ ॥

जाहु भवन कुलकुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी।
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा।
तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि बिरोधे नहिँ कल्याना।
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद्य बंदि कवि मानस गुनी।
उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघु-नायक-सरना।
उतरु देत मोहि बधब अभागे। कस न मरउँ रघु-पति-सर लागे।
अस जिय जानि दसानन संगा। चला राम-पद-प्रेम अभंगा।
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही।

दो०—मम पाछे धर धावत, धरे सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहिँ बिलोकिहउँ, धन्य न मो सम आन ॥२६॥

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ।
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनकदेह मनिरचित बनाई।
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेखा।
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला।
सत्यसंध प्रभु बध करि एही। आनहु चर्म कहत बैदेही।
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काज सँवारन।
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साधा।
प्रभु लछिमनहिँ कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई।
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी।
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाये राम सरासन साजी।
निगम नेति सिव ध्यान न पावा। माया मृग पाछे सो धावा।
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छिपाई।
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लेइ दूरी।
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा।

लछिमन कै प्रथमहिँ लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा।
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि राम समेत सनेहा।
अंतरप्रेमु तासु पहिचाना। मुनि-दुर्लभ-गति दीन्हि सुजाना।

दो०—विपुल सुमन सुर बरषहिँ, गावहिँ प्रभु-गुन-गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ, दीनवंधु रघुनाथ॥ २७॥

खल वधि तुरत फिरे रघुवीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा।
आरतगिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता।
जाहु वेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता।
भृकुटिविलास सृष्टिलय होई। सपनेहु संकट परइ कि सोई।
मरमवचन जब सीता बोला। हरिप्रेरित लछिमन मन डोला।
बन-दिसि-देव सौँपि सब काहू। चले जहाँ रावन-ससि-राहू।
सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती के वेखा।
जा के डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं।
सो दससीस स्वान की नाई। इत उत चितइ चला भड़िहाई।
नाना बिधि कहि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई।
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं।
तव रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा।
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु खल रहु ठाढ़ा।
जिमि हरिवधुहि छुद्र सस चाहा। भवसि कालवस निसिचरनाहा।
सुनत बचन दससीस लजाना। मन महँ चरन वंदि सुख माना।

दो०—क्रोधवंत तव रावन, लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ॥ २८॥

हा जगदेक वीर रघुराया। केहि अपराध विसारेहु दाया।
आरतिहरन सरन-सुख-दायक। हा रघु-कुल-सरोज-दिन-नायक।
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फल पायेउँ कीन्हेउँ रोसा।
बिबिधि विलाप करति वैदेही। भूरिकृपा प्रभु दूरि सनेही।

बिपति मोरि के प्रभुहिं सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा।
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भये चराचर जीव दुखारी।
गीधराज सुनि आरत बानी। रघु-कुल-तिलक-नारि पहिचानी।
अधम निसाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेछबस कपिला गाई।
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कै नासा।
धावा क्रोधवंत खग कैसे। छुटइ पवि पर्वत कहँ जैसे।
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेसि मोही।
आवत देखि कृतांतसमाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना।
का मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई।
जाना जरठ जटायू एहा। मम करतीरथ छाड़िहि देहा।
सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा।
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहिँ त अस होइहि बहुबाहू।
राम रोष-पावक अति घोरा। होइहि सलभ सकल कुल तोरा।
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिँ गीध धावा करि क्रोधा।
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहिँ राखि गीध पुनि फिरा।
चोंचन मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरछा तेही।
तब सक्रोध निसिचर खिसियाना। काढ़ेसि परमकराल कृपाना।
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी।
सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी।
करति बिलाप जात नभ सीता। ब्याधबिबस जनु मृगी सुभीता।
गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरिनामु दीन्ह पट डारी।
एहि बिधि सीतहि सो लेइ गयऊ। बन असोक महुँ राखत भयऊ।

दो०—हारि परा खल बहु बिधि, भय अरु प्रीति देखाइ।
नब असोक पादप तर, राखेसि जतनु कराइ॥ २९॥

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग, धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम॥ ३०॥

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेखी।
जनकसुता परिहरेहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली।
निसि-चर-निकर फिरहिं बनमाहीं। मम मन सीता आस्रम नाहीं।
गहि पदकमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी।
अनुजसमेत गये प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आस्रम जहवाँ।
आस्रम देखि जानकीहीना। भये बिकल जस प्राकृत दीना।
हा गुनखानि जानकी सीता। रूप-सील-ब्रत-नेम-पुनीता।
लछिमन समझाये बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाती।
हे खग मृग हे मधुकरस्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुपनिकर कोकिला प्रबीना।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी।
बरुनपास मनोजधनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं।
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी।
पूरनकाम राम सुखरासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी।
आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत रामचरन जिन्ह रेखा।

दो०—करसरोज सिर परसेउ, कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम-छबि-धाम-मुख, बिगत भई सब पीर॥ ३१॥

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भवभीरा।
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहि खल जनकसुता हरि लीन्ही।
लेइ दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं।
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना।
राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहि बाता।
जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउँ मुकुत होइ स्रुति गावा।

सो मम लोचन गोचर आगे। राखउँ देह नाथ केहि लागे।
जल भरि नयन कहहिँ रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई।
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा।

दो०—अबिरल भगति माँगि बर, गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्ही राम॥ ३२॥

पुनि सीतहि खोजत दोउ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई।
संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन।
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहि सब कही साप कै बाता।
ताहि देइ गति रामु उदारा। सबरी के आस्रम पगु धारा।
सबरी देखि रामु गृह आये। मुनि के बचन समुझि जिय भाये।
सरसि-ज-लोचन बाहु बिसाला। जटामुकुट सिर उर बनमाला।
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।
प्रेममगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पदसरोज सिरु नावा।
सादर जल लइ चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे।

दो०—कंद मूल फल सुरस अति, दिये राम कहुँ आनि।
प्रेमसहित प्रभु खाये, बारंबार बखानि॥ ३३॥

चले राम त्यागा बन सोऊ। अ-तुलित-बल नरकेहरि दोऊ।
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संवादा।
लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिँ छोभा।
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रियाहीन मोहि भय उपजावा।
बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिये जनु तानी।
कदलि तालबर ध्वजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका।
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना।
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाये। जनु भटबिलग बिलग होइ छाये।
कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते।

मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी।
तीतर लावक पद-चर-जूथा। बरनि न जाइ मनोजबरूथा।
रथ गिरसिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुनगन बरना।
मधु-कर-मुखर भेरि सहनाई। त्रिविध बयारि बसीठी आई।
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हे। विचरत सबहिँ चुनौती दीन्हे।
लछिमन देखत कामअनीका। रहहिँ धीर तिन्ह के जग लीका।
एहि के एक परमबल नारी। तेहि तेँ उबर सुभट सोइ भारी।

दो०—तात तीनि अतिप्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विज्ञानधाम मन, करहिँ निमिष महुँ छोभ॥ ३४॥
लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिवर कहहिँ विचारि॥ ३५॥

पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा।
संतहृदय जल निर्मल बारी। बांधे घाट मनोहर चारी।
जहँ तहँ पियहिँ विविध मृग नीरा। जनु उदारगृह जाचकभीरा।
बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।
बोलत जलकुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा।
चक्रवाक-बक-खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिँ जाई।
सुंदर खग-गान-गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बुलाई।
तालसमीप मुनिन्ह गृह छाये। चहुँ दिसि कानन विटप सुहाये।
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला।
नवपल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीकपटली कर गाना।
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ।
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं।

दो०—फल भर नम्र विटप सब, रहे भूमि नियराइ।
परउपकारी पुरुष जिमि, नवहिँ सुसंपति पाइ॥ ३६॥

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा।

देखी सुंदर तरु वर छाया। बैठे अनुजसहित रघुराया।
तहँ पुनि सकल देव मुनि आये। अस्तुति करि निज धाम सिधायें।
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला।
विरहवंत भगवंतहिँ देखी। नारदमन भा सोच विसेखी।
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुखभारा।
ऐसे प्रभुहिँ विलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई।
यह विचार नारद कर-बीना। गये जहां प्रभु सुख आसीना।
गावत रामचरित मृदुवानो। प्रेमसहित बहु भाँति बखानी।
करत दंडवत लिये उठाई। राखे बहुत बार उर लाई।
स्वागत पूछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे।

दो॰—नाना विधि विनती करि, प्रभु प्रसन्न जिय जानि।
नारद बोले बचन तव, जोरि सरोरुह पानि॥ ३७॥

सुनहु उदार परम रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बरदायक।
देहु एक बरु माँगउ स्वामी। जद्यपि जानत अन्तरजामी।
जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ।
कवन वस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम्ह मांगी।
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस विस्वास तजहु जनु मोरे।
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई।
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। स्रुति कह अधिक एक तें एका।
राम सकल नामन्ह तें अधिका। होउ नाथ अघ-खग-गन बधिका।

दो॰—राकारजनी भगति तव, रामनाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन विमल, बसहु भगत-उर-ब्योम॥ ३८॥
एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति, प्रभुपद नायेउ माथ॥ ३६॥

सुनि रघुपति के बचन सुहाये। मुनितन पुलक नयन भरि आये।
कहहु कवन प्रभु के असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती।

जे न भजहिँ अस प्रभु भ्रम त्यागी। ज्ञानरंक नर मंद अभागी॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिज्ञानबिसारद॥
संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भंजन भवभीरा॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह तें मैं उन्हके बस रहऊँ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसंध कवि कोविद जोगी॥
सावधान मानद मदहीना। धीर भगतिपथ परम प्रबीना॥

दो०—गुनागार संसार-दुख, रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरनसरोज प्रिय, जिन्ह कहुँ देह न गेह॥ ४०॥

निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीं। परगुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिँ त्यागहिँ नीती। सरल सुभाव सबहिँ सन प्रीती॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु-गोविंद-बिप्र-पद-प्रेमा॥
स्रद्धा छमा मइत्री दाया। मुदिता मम पदप्रीत अमाया॥
बिरति बिबेक बिनय बिज्ञाना। बोध जथारथ बेदपुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिँ सुनहिँ सदा मम लीला। हेतुरहित पर-हित-रत-सीला॥
सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिँ सारद स्रुति तेते॥

छं०—कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पदपंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगतगुन निज मुख कहे।
सिरु नाइ बारहिँ बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गये।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरिरँग रये॥

किष्किंधा कांड ।

सो०—मुक्तिजनम महि जानि, ज्ञानखानि अघहानिकर ।
जहँ बस संभुभवनि, सो कासी सेइय कस न ॥ १ ॥
जरत सकल सुरवृंद, विषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मति मंद, को कृपाल शंकरसरिस ॥ २ ॥

आगे चले बहुरि रघुराया रिष्यमूक पर्वत नियराया ।
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवाँ । आवत देखि अ-तुल बलसीवाँ ।
अति सभीत कह सुनु हनुमाना । पुरुष-जुगल बल-रूप-निधाना ।
धरि बटुरूप देखु तैं जाई । कहेसु जानि जिय सैन बुझाई ।
पठये बालि होहि मन मैला । भागउँ तुरत तजउँ यह सैला ।
विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ । माथ नाइ पूछत अस भयऊ ।
को तुम्ह स्यामल - गौर - शरीरा । छत्रीरूप फिरहु वन बीरा ।
कठिनभूमि कोमल- पद- गामी । कवन हेतु विचरहु वन स्वामी ।
मृदुल मनोहर सुंदर गाता । सहत दुसह बन आतप बाता ।
की तुम्ह तीन देव हँ कोऊ । नरनारायण की तुम्ह दोऊ ।

दो०—जगकारन तारन भव, भंजन धरनीभार ।
की तुम्ह अखिल-भुवन पति, लीन्ह मनुजअवतार ॥ ३ ॥

कोसलेस दसरथ के जाये । हम पितुवचन मानि बन आये ।
नाम राम लछिमन दोउ भाई । संग नारि सुकुमार सुहाई ।
इहाँ हरी निसिचर बैदेही । विप्र फिरहिँ हम खोजत तेही ।
आपन चरित कहा हम गाई । कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ।
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना । सो सुख उमा जाइ नहिँ बरना ।
पुलकित तन मुख आव न बचना । देखत रुचिर बेष कै रचना ।
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही । हरष हृदय निज नाथहिँ चीन्हीं ।

मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं।
तव मायाबस फिरउँ भुलाना। ता तें मैं नहिं प्रभु पहिचाना।

दो०—एक मंद मैं मोहबस, कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबंधु भगवान॥ ४॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहिं परइ जन भोरे।
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा।
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई।
सेवक-सुत पति-मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे।
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज-लोचन-जल सींचि जुड़ावा।
सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना।
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवकप्रिय अनन्यगति सोऊ।

दो०—सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत॥ ५॥

देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदय हरष बीते सब सूला।
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई।
तेहि सन नाथ मइत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे।
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि।
एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिये दुअउ जन पीठि चढ़ाई।
जब सुग्रीव राम कहुँ देखा। अतिसय जनम धन्य करि लेखा।
सादर मिलेउ नाइ पदमाथा। भेंटेउ अनुजसहित रघुनाथा।
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ये प्रीती।

दो०—तब हनुमंत उभय दिसि, कहि सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाय॥ ६॥

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन रामचरित सब भाखा।
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी।

मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा।
गगनपंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलखाता।
राम राम हा राम पुकारी। हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी।
माँगा राम तुरत तेहि दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा।
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा।
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई।

दे।०—सखाबचन सुनि हरषे, कृपासिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन, मोहि कहहु सुग्रीव॥ ७॥

नाथ बालि अरु मैं दोउ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई।
मयसुत मायावी तेहि नाऊं। आवा से। प्रभु हमरे गाऊं।
अर्धराति पुरद्वार पुकारा। बाली रिपुबल सहइ न पारा।
धावा बालि देखि से। भागा। मैं पुनि गयउं बंधु सँग लागा।
गिरि-बर-गुहा पैठ से। जाई। तब बाली मोहिं कहा बुझाई।
परिखेसु मोहिँ एक पखवारा। नहिँ आवउँ तब जानेसु मारा।
मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिरधार तहँ भारी।
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देई तहँ चलेउँ पराई।
मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउँ मोहि राज बरिआईं।
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जिय भेद बढ़ावा।
रिपुसम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी।
ता के भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला।
इहाँ सापबस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं।
सुनि सेवकदुख दीनदयाला। फरकि उठीं दोउ भुजा बिसाला।

दे।०—सुनु सुग्रीवँ मारिहउँ, बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म - रुद्र - सरनागत, गये न उबरिहि प्रान॥ ८॥

जे न मित्र दुख होहिँ दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।
निज-दुख गिरि-सम रज करि जाना। मित्र के दुखरज मेरुसमाना।

जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते सठ हठि कत करत मिताई।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटइ अवगुनन्हि दुरावा।
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।
बिपतिकाल कर सतगुन नेहा। स्रुति कह संत मित्र गुन एहा।
आगे कह मृदुवचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई।
जा कर चित अहि-गति-सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई।
सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूलसम चारी।
सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि करब काज मैं तोरे।
लेइ सुग्रीवँ संग रघुनाथा। चले चापसायक गहि हाथा।
तब रघुपति सुग्रीवँ पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा।
सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा।
सुनु पति जिन्हहिँ मिलेउ सुग्रीवाँ। ते दोउ बंधु तेजबलसीवाँ।
कोसलेससुत लछिमनरामा। कालहु जीति सकहिँ संग्रामा।

दो०—कहा बालि सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।
जौँ कदाचि मोहि मारहिँ, तौ पुनि होउँ सनाथ ॥ ६ ॥

अस कहि चला महाअभिमानी। तृनसमान सुग्रीवँहि जानी।
भिरे उभौ बाली अति तरजा। मुठिका मारि महाधुनि गरजा।
तब सुग्रीवँ बिकल होई भागा। मुष्टि प्रहार बज्रसम लागा।
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला।
एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहि मारेउँ सोऊ।
कर परसा सुग्रीवँ सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा।
मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला।
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटपओट देखहिँ रघुराई।

दो०—बहु छलबल सुग्रीवँ करि, हिय हारा भय मानि।
मारा बाली राम तब, हृदय माँझ सर तानि ॥ १० ॥

परा बिकल महि सर के लागे। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।

स्यामगात सिर जटा बनाये। अरुननयन सर चाप चढ़ाये।
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा।
हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा।
धर्महेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याधा की नाईं।
मैं बैरी सुग्रीवँ पियारा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।
अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुन सठ ए कन्या सम चारी।
इन्हहिं कुदिष्ट बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारिसिखावन करेसि न काना।
मम भुज बल-आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी।

दो०—सुनहु राम स्वामी सकल, चलन चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अंतकाल गति तोरि॥ ११॥

सुनत राम अति कोमल बानी। बालिसीस परसेउ निज पानी।
अचल करउँ तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना।
जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।
जासु नामबल शंकर कासी। देत सबहिं समगति अविनासी।
मम लोचनगोचर सोइ आवा। बहुरि किप्रभुअसबनिहिबनावा।

छंद—सो नयनगोचर जासु गुन नित नेति कहि स्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥
मोहि जानि अति-अभिमान-बस प्रभु कहेहु राखु सरीरही।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही॥
अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।
जेहि जोनि जनमउँ कर्मबस तहँ रामपद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनयबल कल्यानपद प्रभु लीजिये।
गहि बाँह सुर-नर-नाह आपन दास अंगद कीजिये॥

दो०—रामचरन दृढ़प्रीति करि, बालि कीन्ह तनुत्याग।
सुमनमाल जिमि कंठ तें, गिरत न जानइ नाग॥ १२॥

राम बालि निज धाम पठावा। नगरलोग सब व्याकुल धावा।
नाना विधि विलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा।
तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया।
उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति वर माँगी।
उमा दारुजोषित की नाईं। सबहिं नचावत रामु गोसाईं।
तब सुग्रीवँहि आयसु दीन्हा। मृतककर्म विधिवत सब कीन्हा।
राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवँहि जाई।
रघु-पति-चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा।

दो०—लछिमन तुरत बोलाये, पुरजन विप्रसमाज।
राज दीन्ह सुग्रीवँ कहुँ, अंगद कहँ जुबराज॥ १३॥

पुनि सुग्रीवँहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई।
कह प्रभु सुनु सुग्रीवँ हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा।
गत ग्रीषम बरषारितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई।
अंगदसहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू।
जब सुग्रीवँ भवन फिरि आये। राम प्रवरषन गिरि पर छाये।
सुंदर वन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुपनिकर मधुलोभा।
कंद मूल फल पत्र सुहाये। भये बहुत जब तें प्रभु आये।
देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुजसहित सुरभूपा।
मंगलरूप भयउ वन तब तें। कीन्ह निवास रमापति जब ते।
फटिकसिला अतिसुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई।
कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृपनीति विवेका।
बरषाकाल मेघ नभ छाये। गर्जत लागत परम सुहाये।

दो०—लछिमन देखहु मोरगन, नाचत वारिद पेखि।
गृही बिरतिरत हरष जस, विष्णुभगत कहुं देखि॥ १४॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।
दामिनि दमकि रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।

बरषहिं जलद भूमि नियराये। जथा नवहिं बुध विद्या पाये।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे।
छुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरेहु धन खल इतराई।
भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी।
झिमिटिसिमिटजलभरहितलावा। जिमि सदगुन सज्जनपहि आवा।
सरिता जल जलनिधि महं जाई। होइ अचल जिमि जिव हरिपाई।

दो०—हरित भूमि तृनसंकुल, समुझि परहिँ नहिँ पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें, गुप्त होहिँ सदग्रंथ॥ १५॥

दादुरधुनि चहुँ दिसा सुहाई। वेद पढ़हिँ जनु बटुसमुदाई।
नवपल्लव भये बिटप अनेका। साधक मन जस मिले विवेका।
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।
खोतज कतहुँ मिलइ नहिँ धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महिँ दूरी।
ससिसम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी की संपति जैसी।
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन कर मिला समाजा।
महावृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिँ नारी।
कृषी निरावहिँ चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिँ मोह मद माना।
देखियत चक्रवाक खग नाहीँ। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं।
ऊपर बरषइ तृन नहिँ जामा। जिमि हरि-जन-हिय उपज न कामा।
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रियगन उपजे ज्ञाना।

दो०—कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिँ।
जिमि कपूत के उपजे, कुल सद्धर्म नसाहिँ॥ १६॥
कबहुँ दिवस महुँ निबिड़तम, कबहुंक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग॥ १७॥

बरषा बिगत सरदरितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई।
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषाकृत प्रगट बुढ़ाई।

उदित अगस्त पंथजल सोखा। जिमि लोभहि सोखइ संतोषा।
सरितासर निर्मलजल सोहा। संतहृदय जस गत-मद-मोहा।
रस रस सूख सरित-सर-पानी। ममतात्याग करहिं जिमि ज्ञानी।
जानि सरदरितु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये।
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति-निपुन-नृपकै जसि करनी।
जलसंकोच विकल भइ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना।
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरिसब आसा।
कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। कोउ एकपाव भगति जसि मोरी।

दो०—चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ स्रम, तजहिं आस्रमी चारि॥ १८॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरिसरन न एकउ बाधा।
फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा।
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खगरव नाना रूपा।
चक्रवाकमन दुख निसि पेखी। जिमि दुरजन परसंपति देखी।
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न शंकरद्रोही।
सरदातप निसि ससि अपहरई। संतदरस जिमि पातक टरई।
देखि इंदु चकोरसमुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरिपाई।
मसकदंस बीते हिमत्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुलनासा।

दो०—भूमि जीव संकुल रहे, गये सरदरितु पाइ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि, संसय-भ्रम-समुदाइ॥ १९॥

बरषागत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई।
एक बार कैसेहुँ सुधि जानउँ। कालहु जीति निमिष महुँ आनउँ।
कतहुँ रहउ जौं जीवत होई। तात जतन करि आनउँ सोई।
सुग्रीवँहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी।
जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतहुँ मूढ़ कहुँ काली।
जासु कृपा छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहु कोहा।

जानहिं यह चरित्र मुनि ज्ञानी। जिन्ह रघु-बीर-चरन-रति मानी।
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना।

दो०—तब अनुजहिं समुझावा, रघुपति करुनासींव।
भय देखाइ लेइ आवहु, तात सखा सुग्रीव॥ २०॥

इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा। रामकाज सुग्रीवँ बिसारा।
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।
सुनि सुग्रीवँ परमभय माना। बिषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना।
अब मारुतसुत दूतसमूहा। पठवहु जहँ तहँ बानरजूहा।
कहेउ पाख महुँ आव न जोई। मोरे कर ता कर बध होई।
तब हनुमंत बोलाये दूता। सब कर करि सनमान बहूता।
भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिरु नाई।
एहि अवसर लछिमन पुर आये। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाये।

दो०—धनुष चढ़ाइ कहा तब, जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब, आयउ बालिकुमार॥ २१॥

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभयबाँह तेहि दीन्ही।
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अतिभय अकुलाना।
सुनु हनुमंत संग लेइ तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा।
तारासहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजसु बखाना।
करि बिनती मंदिर लेइ आये। चरन पखारि पलँग बैठाये।
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा।
नाथ बिषयसम मद कछु नाहीं। मुनिमन मोह करइ छन माहीं।
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहुबिधि समुझावा।
पवनतनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गये दूत समुदाई।

दो०—हरषि चले सुग्रीवँ तब, अंगदादिकपि साथ।
रामानुज आगे करि, आये जहँ रघुनाथ॥ २२॥

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी।

अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया।
विषयवस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पामर पसु कपि अतिकामी।
नारि-नयन-सर जाहि न लागा। घोर-क्रोध-तम-निसि जो जागा।
लोभपास जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया।
यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई।
तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई।
अब सोइ जतन करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई।

दो० – एहि बिधि होत बतकही, आये बानरजूथ।
नाना बरन सकल दिसि, देखिय कीसबरूथ॥ २३॥
बचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीवँ बोलाये, अंगद नल हनुमंत॥ २४॥

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना।
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीतासुधि पूछेहु सब काहू।
मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काज सँवारेहु।
आयसु माँगि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई।
पाछे पवनतनय सिरु नावा। जानि काजु प्रभु निकट बोलावा।
परसा सीस सरोरुहपानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी।
बहुप्रकार सीतहिं समुझायेहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु।
हनुमत जनम सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना।
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता।

दो०—चले सकल बन खोजत, सरिता सर गिरि खोह।
राम-काज-लय-लीन मन, बिसरा तन कर छोह॥ २५॥

खोजत फिरहिं सकल कपि बीरा। पहुँचे जाइ सिंधु के तीरा।
उहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं।
सब मिलि कहहिं परसपर बाता। बिनु सुधि लये करब का भ्राता।
कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी।

इहाँ न सुधि सीता कै पाई । उहाँ गये मारिहि कपिराई ।
पिता बधे पर मारत मोही । राखा राम निहोर न ओही ।
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं । मरन भयेउ कछु संसय नाहीं ।
अंगदबचन सुनत कपिबीरा । बोलि न सकहिँ नयन बह नीरा ।
छन एक सोचमगन होइ गयऊ । पुनि असबचन कहत सब भयऊ ।
हम सीता कै सोध बिहीना । नहिँ जैहहिँ जुवराज प्रवीना ।
अस कहि लवन-सिंधु-तट जाई । बैठे कपि सब दर्भ डसाई ।
जामवंत अंगददुख देखी । कही कथा उपदेसबिसेखी ।
तात राम कहुँ नर जनि मानहु । निर्गुनब्रह्म अजित अज जानहु ।
हम सब सेवक अति-बड़ भागी । संतत स-गुन - ब्रह्म - अनुरागी ।

दो०—निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर - महि- गो-द्विजलागि ।
सगुनउपासक संग तहँ, रहहिँ मोच्छसुख त्यागि ॥ २६ ॥

एहि बिधि कथा कहहिँ बहु भाँती । गिरिकंदरा सुनी संपाती ।
बाहेर होइ देखे बहु कीसा । मोहि अहारु दीन्ह जगदीसा ।
आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ । दिन बहु चल अहार बिनु मरऊँ ।
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा । आजु दीन्ह बिधि एकहि बारा ।
डरपे गीधबचन सुनि काना । अब भा मरन सत्य हम जाना ।
कपि सब उठे गीध कहँ देखी । जामवंत मन सोच बिसेखी ।
कह अंगद बिचारि मन माहीं । धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ।
राम - काज - कारन तनु त्यागी । हरिपुर गयउ परम - बड़ - भागी ।
सुनि खग हरष-सोक-जुत बानी । आवा निकट कपिन्ह भय मानी ।
तिन्हहिँ अभय करि पूछेसि जाई । कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई ।
सुनि संपाति बंधु कै करनी । रघु-पति-महिमा बहु बिधि बरनी ।

दो०—मोहि लेइ जाहु सिंधुतट, देउँ तिलांजलि ताहि ।
बचनसहाय करबि मैं, पैहहु खोजहु जाहि ॥ २७ ॥

मैं देखउँ तुम्ह नाहीं, गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार॥ २८॥

जो नाँघइ सतजोजन सागर। करइ सो रामकाज मतिआगर॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। रामकृपा कस भयउ सरीरा॥
पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं। अतिअपार भवसागर तरहीं॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। राम हृदय धरि करहु उपाई॥
अस कहि उमा गीध जब गयऊ। तिन्ह के मन अति बिसमय भयऊ॥
निज निज बल सब काहू भाखा। पार जाइ कर संसय राखा॥
जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। नहिँ तनु रहा प्रथम बल-लेसा॥
जबहिँ त्रिविक्रम भयऊ खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बलभारी॥

दो०—बलि बाँधत प्रभु बाढेउ, सो तनु बरनि ना जाइ।
उभय घरी महँ दीन्ही, सात प्रदच्छिन धाइ॥ २६॥

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जिय संसय कछु फिरती बारा॥
जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइय किमि सबही कर नायक॥
कहइ रिच्छपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना॥
पवन-तनय-बल पवनसमाना। बुधि-बिबेक-बिज्ञान-निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिँ तात होइ तुम्ह पाहीं॥
रामकाज लगि तव अवतारा। सुनतहिँ भयऊ पर्वताकारा॥
कनक-बरन-तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिँ बारा। लीलहि नाँघउँ जलधि अपारा॥
सहित सहाय रावनहिँ मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
जामवंत मैं पूछउँ तोही। उचित सिखावन दीजेहु मोही॥
एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज-भुज-बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपिसैना॥

छं०—कपि-सेन-संग सँघारि निसिचर रामु सीतहिँ आनिहैं।
त्रैलोक-पावन-सु-जस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं।

जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई ।
रघु - बीर - पद - पाथोज - मधुकर दास तुलसी गावई ॥

सुंदर कांड।

जामवंत के वचन सुहाये। सुनि हनुमंत हृदय अति भाये।
तव लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई।
जब लगि आवउँ सीतहि देखी। होय काज मोहि हरप विसेखी।
अस कहि नाइ सवन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हिय धरि रघुनाथा।
सिंधुतीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर।
वार वार रघुवीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय वलभारी।
राम कृपा मारुत-सुत-बीरा। वारिधिपार गयउ मतिधीरा।
तहाँ जाइ देखी वनसोभा। गुंजत चंचरीक मधुलोभा।
नाना तरु फल फूल सोहाये। खग-मृग-वृंद देखि मन भाये।
सैल विसाल देखि एक आगे। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे।
उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभुप्रताप जो कालहि खाई।
गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी। कहि न जाय अति दुर्ग विसेखी।
अतिउतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनककोट कर परमप्रकासा।

छंद—कनककोट विचित्र-मनि-कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुवट्ट बीथी चारु पुर वहुविधि वना।
गज वाजि खच्चर निकर पदचर रथ वरूथन्हि को गनइ।
वहुरूप निसि-चर-जूथ अतिवल सेन वरनत नहिं वनइ॥
वन वाग उपवन वाटिका सर कूप वापी सोहहीं।
नर-नाग-सुर-गंधर्व-कन्या-रूप मुनिमन मोहहीं।
कहुँ माल देहविसाल सैलसमान अतिवल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं वहुविधि एक एकन्ह तर्जहीं।
करि जतन भट कोटिन्ह विकटतन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं।

एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछुयक है कही।
रघु-बीर-सर-तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पइहहिं सही॥

दो०—पुररखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अतिलघु रूप धरेउँ निसि, नगर करउँ पइसार॥ १॥

अति-लघु-रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।
गयउ दसाननमंदिर माहीं। अतिबिचित्र कहि जात सो नाहीं।
सयन किये देखा कपि तेही। मंदिर महुं न दीख बैदेही।
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरिमन्दिर तहँ भिन्न बनावा।

दो०—रामायुधअंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ, देखि हरप कपिराइ॥ २॥

चौ०--लंका निसि-चर-निकर-निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा।
मन महुं तरक करइ कपि लागा। तेही समय बिभीषनु जागा।
राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरप कपि सज्जन चीन्हा।
एहि सनु हठि करिहउँ पहिचानी। साधु तेँ होइ न कारजहानी।
विप्ररूप धरि वचन सुनाये। सुनत विभीषन उठि तहँ आये।
करि प्रनाम पूछी कुसलाई। विप्र कहहु निज कथा बुझाई।
की तुम्ह हरिदासन्ह महुँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई।
की तुम्ह राम-दीन-अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी।

दो०—तव हनुमंत कही सब, रामकथा निज नाम।
सुनत जुगलतन पुलक मन, मगन सुमिरि गुनग्राम॥ ३॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।
तात कबहुं मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानु-कुल-नाथा।
तामस तनु कछु साधन नाही। प्रीति न पदसरोज मन माहीं।
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता।
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा।

सुनहु विभीषन प्रभु कइ रीती । करहिं सदा सेवक पर प्रीती ।
कहहु कवन मैं परम कुलीना । कपि चंचल सबही बिधि हीना ।
प्रात लेइ जो नाम हमारा । तेहि दिन ताहि न मिलइ अहारा ।

दो०—अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुवीर ।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर ॥ ४ ॥

जानत हूं अस स्वामि बिसारी । फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी ।
एहि विधि कहत राम-गुन-ग्रामा । पावा अनिर्वाच्य विस्रामा ।
पुनि सब कथा विभीषन कही । जेहि विधि जनकसुता तहँ रही ।
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता । देखा चहउँ जानकीमाता ।
जुगुति विभीषन सकल सुनाई । चलेउ पवनसुत बिदा कराई ।
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ । बन असोक सीता रह जहवाँ ।
देखि मनहिं महुं कीन्ह प्रनामा । बैठेहि बीति जात निसि जामा ।
कृसतन सीस जटा एक बेनी । जपति हृदय रघु-पति-गुन-स्रेनी ।

दो०—निज पद नयन दिये मन, रामचरन महँ लीन ।
परमदुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ॥ ५ ॥

तरुपल्लव महुं रहा लुकाई । करइ विचार करउँ का भाई ।
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा । संग नारि बहु किये बनावा ।
बहु विधि खल सीतहि समुझावा । साम दाम भय भेद देखावा ।
कह रावन सुनु सुमुखि सयानी । मंदोदरी आदि सब रानी ।
तव अनुचरी करउँ पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ।
तृन धरि ओट कहति वैदेही । सुमिरि अवधपति परमसनेही ।
सुनु दसमुख खद्योतप्रकासा । कबहुं कि नलिनी करइ बिकासा ।
अस मन समुझु कहति जानकी । खल सुधि नहिं रघु-बीर-बानकी ।
सठ सूने हरि आनेहि मोही । अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ।

दो०—आपुहि सुनि खद्योतसम, रामहिं भानुसमान ।
परुषवचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान ॥ ६ ॥

सीता तें मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।
नाहि त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत न त जीवनहानी।
स्याम-सरोज-दाम-सम सुंदर। प्रभुभुज करि-कर-सम दसकंधर।
से भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।
चंद्रहास हर मम परितापं। रघु-पति-विरह- अनल- संजातं।
सीतल निसि तव असि-वर-धारा। कह सीता हरु मम दुखभारा।
सुनत वचन पुनि मारन धावा। मयतनया कहि नीति बुझावा।
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहुविधि त्रासहु जाई।
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना।

दो०—भवन गयंउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिनिवृंद।
सीतहि त्रास देखावहि, धरहि रूप बहुमंद॥ ७॥
जहँ तहँ गईं सकल जब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच॥ ८॥

सो०—कपि करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तव।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥ ९॥

तव देखी मुद्रिका मनोहर। राम-नाम-अंकित अति सुंदर।
चकित चितव मुंदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदय अकुलानी।
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई।
सीता मन विचार कर नाना। मधुरवचन बोलेउ हनुमाना।
राम - चंद्र - गुन बरनइ लागा। सुनतहि सीता कर दुख भागा।
लागी सुनइ स्रवन मन लाई। आदिहुँ तें सब कथा सुनाई।
स्रवनामृत जेहि कथा सुहाई। कहि सो प्रगट होत किन भाई।
तव हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिर बैठी मन विसमय भयऊ।
रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की।
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी।
नर बानरहि संग कहु कैसे। कही कथा भइ संगति जैसे।

दो०—कपि के वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपासिंधु कर दास॥ १०॥

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी।
बूड़त बिरहजलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहँ जलजाना।
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुजसहित सुखभवन खरारी।
कोमलचित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई।
सहजबानि सेवक-सुख-दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक।
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम-मृदु गाता।
वचन न आव नयन भरि बारी। अहह नाथ हौँ निपट बिसारी।
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदुवचन बिनीता।
मातु कुसल प्रभु अनुजसमेता। तव दुख दुखी सु-कृपा-निकेता।
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम्ह तें प्रेम राम के दूना।

दो०—रघुपति कर संदेस अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर॥ ११॥

कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहँ सकल भये बिपरीता।
नव-तरु-किसलय मनहुँ कृसानू। काल-निसा-समनिसि ससिभानू।
कुवलयबिपिन कुंत-बन-सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग-स्वास-सम त्रिबिध समीरा।
कहेहू ते कछु दुख घटि होई। काहि कहउँ यह जान न कोई।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा।
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीतिरस एतनहि माहीं।
प्रभुसंदेस सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।
कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक-सुख-दाता।
उर आनहु रघु-पति-प्रभुताई। सुनि मम वचन तजहु कदराई।

दो०—निसि-चर-निकर पतंगसम, रघु-पति-बान कृसानु।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निसाचर जानु॥ १२॥

जो रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई।
रामबान रबि उये जानकी। तमबरुथ कहँ जातुधान की।
अबहिं मातु मैं जाउँ लेवाई। प्रभुआयसु नहिं रामदोहाई।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिनसहित अइहहिं रघुबीरा।
निसिचर मारि तोहि लेइ जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जस गैहहिं।
हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना। जातुधानभट अति बलवाना।
मोरे हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा।
कनक-भूधरा-कार-सरीरा। समरभयंकर अति-बल-बीरा।
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ।

दो०—सुनु माता साखामृग, नहिं बल-बुद्धि-बिसाल।
प्रभुप्रताप तें गरुड़हिं, खाइ परम लघु व्याल॥ १३॥

मन संतोष सुनत कपिबानी। भगति-प्रताप-तेज-बल-सानी।
आसिष दीन्ह रामप्रिय जाना। होहु तात बल-सील-निधाना।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहिँ बहुत रघुनायक छोहू।
करहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेममगन हनुमाना।
बार बार नायेसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा।
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ विख्याता।
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा।
सुनु सुत करहिं बिपिनरखवारी। परमसुभट रजनीचर भारी।
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं।

दो०—देखि बुद्धि-बल-निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघु-पति-चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु॥ १४॥

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खायेसि तरु तोरइ लागा।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाय पुकारे।
नाथ एक आवा कपि भारी। तेहि असोकबाटिका उजारी।
खायेसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।

सुनि रावन पठये भट नाना। तिन्हहिं देख गर्जेउ हनुमाना।
सब रजनीचर कपि संघारे। गये पुकारत कछु अधमारे।
पुनि पठयेउ तेहिं अछयकुमारा। चला संग लेइ सुभट अपारा।
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा।

दो०—कछु मारेसि कछु मर्दसि, कछु मिलयेसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बलभूरि॥ १५॥

सुनि सुतबध लंकेस रिसाना। पठयेसि मेघनाद बलवाना।
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिय कपिहि कहाँ कर आही।
चला इंद्रजित अ-तुलित-जोधा। बंधुनिधन सुनि उपजा क्रोधा।
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा।
अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेसकुमारा।
रहे महाभट ता के संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा।
तिन्हहिं निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा।
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरछा आई।
उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाय प्रभंजनजाया।

दो०—ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ, महिमा मिटइ अपार॥ १६॥

ब्रह्मबान कपि कहँ तेहि मारा। परतिहुँ बार कटकु सँहारा।
तेहि देखा कपि मुरछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ।
जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भवबंधन काटहिं नर ज्ञानी।
तासु दूत की बंध तरु आवा। प्रभुकारज लगि कपिहि बँधावा।
कपिबंधन सुनि निसिचर धाये। कौतुक लागि सभा सब आये।
दस-मुख-सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई।
कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।
देखि प्रताप न कपिमन संका। जिमि अहिगन महँ गरुड़ असंका।

दो०—कपिहि बिलोकि दसानन ; बिहँसा कहि दुर्वाद ।
सुत-वध-सुरति कीन्ह पुनि ; उपजा हृदय विषाद ॥ १७ ॥

कह लंकेस कवन तैं कीसा । केहि के बल घालेसि बन खीसा ।
की धौं स्रवन सुने नहिँ मोही । देखउँ अति असंक सठ तोही ।
मारे निसिचर केहि अपराधा । कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा ।
सुनु रावन ब्रह्मांडनिकाया । पाइ जासु बल विरचति माया ।
जा के बल विरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ।
जा बल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरि कानन ।
धरे जो विविध देह सुरत्राता । तुम्ह से सठन्ह सिखावनदाता ।
हरकोदंड कठिन जेहि भंजा । तेहि समेत नृप-दल-मद गंजा ।
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली । बधे सकल अ-तुलित-बल-साली

दो०—जाके बललवलेश तेँ, जितेहु चराचर झारि ।
तासु दूत मैं जा करि, हरि आनेहु प्रिय नारि ॥ १८ ॥

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई । सहसबाहु सन परी लराई ।
समर बालि सन करि जस पावा । सुनि कपिवचन बिहँसि बहरावा ।
खायेउँ फल प्रभु लागी भूखा । कपिसुभाव तेँ तोरेउँ रूखा ।
सब के देह परमप्रिय स्वामी । मारहिँ मोहि कु-मारग-गामी ।
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे । तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे ।
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा । कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा ।
बिनती करउँ जोरि कर रावन । सुनहु मान तजि मोर सिखावन ।
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी । भ्रम तज भजहु भगत-भय-हारी ।
जा के डर अति काल डेराई । जो सुर असुर चराचर खाई ।
ता सोँ बैर कबहुँ नहिँ कीजै । मोरे कहे जानकी दीजै ।
जदपि कही कपि अतिहित बानी । भगति-विवेक-विरति-नय- सानी ।
बोला बिहँसि महाअभिमानी । मिला हमहिँ कपि गुरु बड़ ज्ञानी ।
मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ।

उलटा होइहि कह हनुमाना । मतिभ्रम तोरि प्रगट मैं जाना ।
सुनि कपिबचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ।
सुनत निसाचर मारन धाये । सचिवन्ह सहित बिभीषन आये ।
नाइ सीस करि बिनय बहूता । नीतिबिरोध न मारिय दूता ।
आन दंड कछु करिय गोसाईं । सबही कहा मंत्र भल भाई ।
सुनत बिहँसि बोला दसकंधर । अंगभंग करि पठइय बंदर ।

दो०—कपि कै ममता पूँछि पर, सबहिँ कहेउ समुझाय ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाय ॥ १६ ॥

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि । तब सठ निज नाथहिँ लेइ आइहि ।
जिन्ह कै कीन्हेसि बहुत बड़ाई । देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई ।
बचन सुनत कपि मन मुसुकाना । भइ सहाय सारद मैं जाना ।
जातुधान सुनि रावनबचना । लागे रचइ मूढ़ सोइ रचना ।
रहा न नगर बसन घृत तेला । बाढ़ी पूँछि कीन्ह कपि खेला ।
कौतुक कहँ आये पुरबासी । मारहिँ चरन करहिँ बहु हाँसी ।
बाजहिँ ढोल देहिँ सब तारी । नगर फेरि पुनि पूँछि प्रजारी ।
पावक जरत देखि हनुमंता । भयउ परम लघुरूप तुरंता ।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनकअटारी । भईं सभीत निसाचरनारी ।

दो०—हरिप्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास ।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास ॥ २० ॥

देह बिसाल परम हरुआई । मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई ।
जरइ नगर भा लोग बिहाला । झपट लपट बहु कोटि कराला ।
तात मातु हा सुनिय पुकारा । एहि अवसर को हमहिँ उबारा ।
हम जो कहा यह कपि नहिँ होई । बानररूप धरे सुर कोई ।
साधुअवज्ञा कर फल ऐसा । जरइ नगर अनाथ कर जैसा ।
जारा नगरु निमिष एक माहीं । एक बिभीषन कर गृह नाहीं ।
ता कर दूत अनल जेहि सिरिजा । जरा न सो तेहि कारन गिरिजा ।

उलटि पलटि लंका सब जारी । कूदि परा पुनि सिंधु मँझारी ।

दो०—पूँछि बुझाइ खोइ स्रम, धरि लघुरूप बहोरि ।
जनकसुता के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥ २१ ॥

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा । जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा ।
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ । हरषसमेत पवनसुत लयऊ ।
कहेउ तात अस मोर प्रनामा । सब प्रकार प्रभु पूरनकामा ।
दीन-दयालु-बिरुद संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ।
तात सक्र-सुत-कथा सुनायहु । बानप्रताप प्रभुहिँ समुझायहु ।
मास दिवस महुँ नाथ न आवा । तौ पुनि मोहि जियत नहिँ पावा ।
कहु कपि केहि बिधि राखउँ प्राना । तुम्हहूँ तात कहत अब जाना ।
तोहि देखि सीतल भइ छाती । पुनि मोकहुँ सोइ दिनु सोइ राती ।

दो०—जनकसुतहिँ समुझाइ करि, बहु बिधि धीरजु दीन्ह ।
चरनकमल सिरु नाइ कपि, गवनु राम पहिँ कीन्ह ॥ २२ ॥

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी । गर्भ स्रवहिँ सुनि निसिचर-नारी ।
नाँघि सिंधु एहि पारहिँ आवा । सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा ।
हरषे सब बिलोकि हनुमाना । नूतन जनम कपिन्ह तब जाना ।
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा । कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा ।
मिले सकल अति भये सुखारी । तलफत मीन पाव जनु बारी ।
चले हरषि रघुनायक पासा । पूछत कहत नवल इतिहासा ।
आइ सबन्हि नावा पद सीसा । मिले सबन्हि अतिप्रेम कपीसा ।
राम कपिन्ह जब आवत देखा । किये काजु मन हरष बिसेखा ।
फटिकसिला बैठे दोउ भाई । परे सकल कपि चरनन्हि जाई ।

दो०—प्रीतिसहित सब भेंटे, रघुपति करुनापुंज ।
पूछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पदकंज ॥ २३ ॥

जामवंत कह सुनु रघुराया । जापर नाथ करहु तुम्ह दाया ।
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर । सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ।

सोई बिजई बिनई गुनसागर। तासु सुजसु त्रयलोक उजागर।
प्रभु की कृपा भयेउ सबु काजू। जनम हमार सुफल भा आजू।
नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी।
पवनतनय के चरित सुहाये। जामवंत रघुपतिहि सुनाये।
सुनत कृपानिधि मन अति भाये। पुनि हनुमान हरषि हिय लाये।
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की।

दो०—नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज-पद-जंत्रित, जाहिँ प्रान केहि बाट॥ ॥ २४॥

चलत मोहि चूड़ामणि दीन्ही। रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही।
नाथ जुगललोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी।
अनुजसमेत गहेहु प्रभुचरना। दीनबंधु प्रनतारतिहरना।
मन क्रम बचन चरनअनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी।
अवगुन एक मोर मैं जाना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा।
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहँ सरीरा।
नयन स्रवहिं जल निज हित लागी। जरइ न पाव देह बिरहागी।
सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहि कहे भलि दीनदयाला।

दो०—निमिष निमिष करुनानिधि, जाहिं कलपसम बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिय, भुजबल खलदल जीति॥ २५॥

सुनि सीतादुख प्रभु सुखअयना। भरि आये जल राजिवनयना।
बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिय बिपति कि ताही।
कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजनु न होई।
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी।
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।
प्रतिउपकार करउँ का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं।

पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता।

दो०—सुनि प्रभुवचन विलोकि मुख, गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत॥ २६॥

बार बार प्रभु चहहिँ उठावा। प्रेममगन तेहि उठव न भावा।
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परमनिकट बैठावा।
कहु कपि रावनपालित लंका। केहि विधि दहेहु दुर्ग अति बंका।
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला वचन वि-गत-अभिमाना।
साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा ते साखा पर जाई।
नाँघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसि-चर-गन वधि विपिन उजारा।
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछु मोरी प्रभुताई।
तब रघुपति कपि पतिहिँ बुलावा। कहा चलइ कर करहु बनावा।
अब विलंबु केहि कारन कीजै। तुरत कपिन्ह कहुं आयसु दीजै।

दो०—कपिपति वेगि वोलाये, आये जूथप जूथ।
नाना वरन अ-तुल-बल, वानर-भालु-वरूथ॥ २७॥

प्रभु-पद-पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा।
देखी राम सकल कपिसेना। चितइ कृपा करि राजिवनैना।
राम-कृपा-बल पाइ कपिंदा। भये पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा।
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भये सुंदर सुभ नाना।
चला कटकु को वरनइ पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा।
नखआयुध गिरि-पादप-धारी। चले गगन महि इच्छाचारी।
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं।

छंद—चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे।
कटकटहिं मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रवलप्रताप कोसलनाथ गुनगन गावहीं॥
सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।

गहि दसन पुनि पुनि कमठपृष्ठ कठोर सो किमि सोहई।
रघु-बीर-रुचिर-पयान-प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठखर्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी॥

दो०—एहि विधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु विपुल कपिवीर॥ २८॥

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका।
निज निज गृह सब करहिं विचारा। नहिं निसि-चर-कुल केर उबारा।
जासु दूतबल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कवन भलाई।
रावन सुना सैन सब आई। चलेउ सभा ममता अधिकाई।
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू।
अवसर जानि विभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहि नावा।
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन।
जौं कृपालु पूछेहु मोहि बाता। मति-अनु-रूप कहउँ हित ताता।
जो आपन चाहइ कल्याना। सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना।
सो पर-नारि-लिलारु गोसाईं। तजइ चौथि के चंद कि नाईं।
चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्ठइ नहिं सोई।
गुनसागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ।

दो०—तात चरन गहि माँगऊँ, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ, अहित न होइ तुम्हार॥ २९॥

सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई।
जियसि सदा सठ मोर जियावा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा।
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुजबल जेहि जीता मैं नाहीं।
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहिं कहु नीती।
यह सुनि चला विभीषनु जबहीं। आयूहीन भये सब तबहीं।
रावन जबहिं विभीषनु त्यागा। भयउ विभव बिनु तबहिं अभागा।
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं।

कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपुदूत बिसेखा।
ताहि राखि कपीस पहिँ आये। समाचार सब ताहि सुनाये।
कह सुग्रीवँ सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई।
कह प्रभु सखा बूझिये काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा।
जानि न जाय निसा-चर-माया। कामरूप केहि कारन आया।
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा।
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत-भय-हारी।
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागतबच्छल भगवाना।
जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।
सादर तेहि आगे करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर।
दूरहिं तें देखे दोउ भ्राता। नयनानंददान के दाता।
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता।
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसि-चर-बंस-जनम सुरत्राता।
सहज पापप्रिय तामसदेहा। जथा उलूकहिं तम पर नेहा।

दो०—स्रवन सुजसु सुनि आयउ, प्रभु भंजन भवभीर।
त्राहि त्राहि आरतिहरन, सरन सुखद रघुबीर॥ ३०॥

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेखा।
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा।
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत-भय-हारी।
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।
खलमंडली बसहु दिनु राती। सखा धर्म निबहइ केहि भाँती।
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नयनिपुन न भाव अनीती।
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता।
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया।

दो०—तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहुँ मन बिस्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोकधाम तजि काम॥ ३१॥

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ।
जौं नर होइ चराचरद्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही।
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधुसमाना।
सुनु लंकेस सकल गुन तोरे। ता तें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे।
सुनत विभीषनु प्रभु के वानी। नहिँ अघात स्रवनामृत जानी।
पदअंबुज गहि बारहि बारा। हृदय समात न प्रेमु अपारा।
सुनहु देव सचराचर-स्वामी। प्रनतपाल उर-अंतर-जामी।
उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभु-पद-प्रीति-सरित सो बही।
अव कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव-मन-भावनी।
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिंधु कर नीरा।
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमनवृष्टि नभ भई अपारा।
पुनि सर्वज्ञ सर्व-उर-वासी। सर्वरूप सवरहित उदासी।
बोले वचन नीति-प्रति-पालक। कारनमनुज दनुज-कुल-घालक।
सुनु कपीस लंकापति वीरा। केहि विधि तरिय जलधि गंभीरा।
कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि-सिंधु-सोपक तव सायक।
जद्यपि तदपि नीति अस गाई। विनय करिय सागर सन जाई।

दो०—प्रभु-तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहहि उपाय विचारि।
विनु प्रयास सागर तरिहि, सकल भालु-कपि-धारि॥ ३२॥

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिय दैव जौं होइ सहाई।
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। रामवचन सुनि अति दुख पावा।
नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिय सिंधु करिय मन रोसा।
कादरमन कहुं एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।
सुनत विहँसि बोले रघुवीरा। ऐसइ करव धरहु मन धीरा।
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गये रघुराई।
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। वैठे पुनि तट दर्भ डसाई।

दो०—बिनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति॥ ३३॥

लछिमन बानसरासन आनू। सोखउँ बारिधि बिसिखकृसानू।
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपिन सन सुंदर नीती।
ममतारत सन ज्ञानकहानी। अतिलोभी सन बिरति बखानी।
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बये फल जथा।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा।
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उरअंतर ज्वाला।
मकर-उरग-झष-गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने।
कनकथार भरि मनिगन नाना। बिप्ररूप आयउ तजि माना।

दो०—काटेहि पइ कदली फरइ, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाँटेहि पै नव नीच॥ ३४॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी।
तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रंथन्हि गाये।
प्रभुआयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरिय कीन्ही।
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल, ताड़ना के अधिकारी।
प्रभुप्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई।
प्रभु आज्ञा अपेल स्रुति गाई। करउ सो बेगि जो तुम्हहि सुहाई।

दो०—सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरइ कपिकटकु, तात सो कहहु उपाय॥ ३५॥

नाथ नील नल कपि दोउ भाई। लरिकाईं रिषिआसिष पाई।
तिन्ह के परस किये गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।
मैं पुनि उर धरि प्रभुप्रभुताई। करिहउँ बलअनुमान सहाई।
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइय। जेहि यह सुजसु लोक तिहुँ गाइय।

एहि सर मम उत्तर-तट-बासी। हतहु नाथ खल नर अघरासी।
सुनि कृपाल सागर-मन-पीरा। तुरतहि हरी राम रनधीरा।
देखि राम-बल-पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी।
सकल चरित कहि प्रभुहिं सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा।

लंका कांड।

दो०—लव निमेष परमान जुग, बरष कल्प सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु कोदंड ॥ १ ॥

सो०—सिंधुवचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलंबु केहि काम, करहु सेतु उतरइ कटक ॥ २ ॥
सुनहु भानु - कुल - केतु, जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढ़ि भवसागर तरहिँ ॥ ३ ॥

यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा।
प्रभुप्रताप बड़वानल भारी। सोखेउ प्रथम पयो-निधि-बारी।
तव रिपु-नारि-रुदन - जल-धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा।
सुनि अतिउक्ति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघु - पति - तन हेरी।
जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहिँ सब कथा सुनाई।
रामप्रताप सुमिरि मन माहीँ। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीँ।
बोलि लिये कपिनिकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी।
राम - चरन - पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू।
धावहु मरकट बिकटबरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा।
सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रतापसमूहा।

दो०—अतिउतंग तरुसैलगन, लीलहिँ लेहिँ उठाइ।
आनि देहिँ नल नीलहि, रचहिँ ते सेतु बनाइ ॥ ४ ॥

सैल बिसाल आनि कपि देहीँ। कंदुक इव नल नील ते लेहीँ।
देखि सेतु अति - सुंदर - रचना। बिहँसि कृपानिधि बोले बचना।
परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिँ बरनी।
करिहउँ इहाँ संभुथापना। मोरे हृदय परम कलपना।
सुनि कपीस बहु दूत पठाये। मुनिवर सकल बोलि लेइ आये।

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिवसमान प्रिय मोहि न दूजा।
सिवद्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न पावा।
शंकरबिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।

दो०—शंकरप्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिँ कलप भरि, घोर नरक महँ बास॥ ५॥

जो रामेस्वर दरसन करिहहिं। ते तनु तजि हरिलोक सिधरिहहिं।
जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि।
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि शंकर देइहि।
मम कृत सेतु जो दरसन करिही। सो बिनु स्रम भवसागर तरिही।
रामबचन सब के जिय भाये। मुनिवर निज निज आस्रम आये।
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिँ प्रनत पर प्रीती।
बाँधेउ सेतु नील नल नागर। रामकृपा जसु भयउ उजागर।
बूड़हिँ आनहिँ बोरहिँ जेई। भये उपल बोहित सम तेई।
महिमा यह न जलधि कै बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी।

दो०—श्री-रघु-बीर-प्रताप तेँ, सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिँ जाइ प्रभु आन॥ ६॥

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा।
चली सेन कछु बरनि न जाई। गरजहिँ मरकट-भट-समुदाई।
सेतुबंधु ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधुबहुताई।
देखन कहँ प्रभु करुनाकंदा। प्रगट भये सब जल-चर-बृंदा।
मकर नक्र झष नाना ब्याला। सत-जोजन-तन परमबिसाला।
ऐसेउ एक तिन्हहि जे खाहीँ। एकन्ह के डर तेपि डेराहीं।
प्रभुहिँ बिलोकहिँ टरहिँ न टारे। मन हरषित सब भये सुखारे।
तिन्ह की ओट न देखिए बारी। मगन भये हरिरूप निहारी।
चला कटक कछु बरनि न जाई। को कहि सक कपि-दल-बिपुलाई।

दो०—सेतुबंध भइ भीर अति, कपि नभपंथ उड़ाहिँ।
अपर जलचरन्हि ऊपर, चढ़ि चढ़ि पारहिँ जाहिँ॥ ७॥

अस कौतुक विलोकि दोउ भाई। विहँसि चले कृपाल रघुराई।
सेनसहित उतरे रघुवीरा। कहि न जाइ कपि-जूथप-भीरा।
सिंधुपार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहँ आयुस दीन्हा।
खाहु जाइ फल मूल सुहाये। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाये।
सब तरु फरे रामहित लागी। रितु अनरितु अकालगति त्यागी।
खाहिंमधुर फल विटप हिलावहिं। लंका सनमुख सिखर चलावहिँ।
जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिँ।
दसनन्हि काटि नासिका काना। कहि प्रभुसुजस देहिँ तब जाना।
जिन्ह कर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहिँ कही सब बाता।
सुनत स्रवन वारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना।

दो०—बाँधे बननिधि नीरनिधि, जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपती, उदधि पयोधि नदीस॥ ८॥

व्याकुलता निज समुझि वहोरी। विहँसि चला गृह करि भय भोरी।
मंदोदरी सुनेउ प्रभु आयो। कौतुकही पाथोधि बँधायो।
कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परममनोहर बानी।
चरन नाइ सिरु अंचल रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा।
नाथ बैर कीजे ताही सोँ। बुधिबल सकिय जीति जाही सोँ।
तुम्हहिँ रघुपतिहिँ अंतर कैसा। खल खद्योत दिनकरहिँ जैसा।
अतिबल मधुकैटभ जेहि मारे। महावीर दितिसुत संहारे।
जेइ बलि बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महिभारा।
तासु विरोध न कीजिय नाथा। काल करम जिव जा के हाथा।

दो०—रामहिँ सौँपिय जानकी, नाइ कमल पद माथ।
सुत कहँ राजु समर्पि बन, जाइ भजिय रघुनाथ॥ ९॥

नाथ दीनदयाल रघुराई। बाघउ सनमुख गये न खाई।

चाहिय करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते।
संत कहहिँ असि नीति दसानन। चौथे पन जाइहि नृप कानन।
तासु भजन कीजिय तहँ भरता। जो करता पालक संहरता।
सोइ रघुवीर प्रनतअनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी।
मुनिवर जतन करहिँ जेहि लागी। भूप राज तजि होहिँ विरागी।
सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया।
जो पिय मानहु मोर सिखावन। होइ सुजसु तिहुँ पुर अति पावन।

दो०—अस कहि लोचन बारि भरि, गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघु-वीर-पद, अचल होइ अहिवात ॥ १० ॥

तब रावन मयसुता उठाई। कहइ लाग खल निज प्रभुताई।
सुनु तैं प्रिया वृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना।
वरुन कुवेर पवन जम काला। भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला।
देव दनुज नर सब बस मोरे। कवन हेतु उपजा भय तोरे।
नाना विधि तेहि कहेसि बुझाई। सभा बहोरि बैठि सो जाई।
मंदोदरी हृदय अस जाना। कालविवस उपजा अभिमाना।
सभा आइ मंत्रिन्ह तेहि बूझा। करब कवनि विधि रिपु सैँ जूझा।
कहहिं सचिव सुनु निसिचर-नाहा। बार बार प्रभु पुछहु काहा।
कहहु कवन भय करिय विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा।

दो०—बचन सबहिँ के स्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीतिविरोध न करिय प्रभु, मंत्रिन्ह मति अति थोरि ॥ ११ ॥

कहहिं सचिव सब ठकुरसोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती।
वारिधि नाँघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महँ सब गावा।
छुधा न रही तुम्हहिं तब काहू। जारत नगर कस न धरि खाहू।
सुनत नीक आगे दुख पावा। सचिवन्ह अस मत प्रभुहिं सुनावा।
जेहि वारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुवेला।
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई।

तात वचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर॥
प्रियबानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥
बचन परमहित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥
प्रथम बसीठ पठव सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती॥

दो०—नारि पाइ फिरि जाहिं जौं, तौ न बढ़ाइय रारि।
नाहिं त सनमुख समर महि, तात करिय हठि मारि॥ १२॥

यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजस जग तोरा॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहि तोहि सिखाई॥
अबहीं ते उर संसय होई। बेनुमूल सुत भयउ घमोई॥
सुनि पितुगिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा॥
हितमत तोहि न लागत कैसे। कालबिबस कहुं भेषज जैसे॥
संध्यासमय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुजबीसा॥
लंका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा॥
बैठ जाइ तेहि मंदिर रावन। लागे किन्नर गुनगन गावन॥
बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपसरा प्रबीना॥

दो०—सुनासीर-सत-सरिस सोइ, संतत करइ बिलास।
परम-प्रबल-रिपु सीस पर, तदपि न कछु मन त्रास॥ १३॥

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सैलशृंग एक सुंदर देखी। अति उतंग सम सुभ्र बिसेखी॥
तहँ तरु-किसलय-सुमन सुहाये। लछिमन रचि निज हाथ डसाये॥
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहि आसन आसीन कृपाला॥
प्रभु कृत सीस कपीसउछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा॥
दुहुँ करकमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥
बड़भागी अंगद हनुमाना। चरनकमल चाँपत बिधि नाना॥
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥

दो०—एहि विधि करुनासील गुन, धाम राम आसीन ।
ते नर धन्य जे ध्यान एहि, रहत सदा लयलीन ॥ १४ ॥
पूरब दिशा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक ।
कहत सबहिं देखहु ससिहि, मृग-पति-सरिस असंक ॥ १५ ॥

पूरब दिसि गिरि-गुहा-निवासी । परम प्रताप तेज बलरासी ।
मत्त-नाग - तम-कुम्भ- बिदारी । ससि केसरी गगन-बन-चारी ।
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा । निसि सुंदरी केर सिंगारा ।
कह प्रभु ससि महं मेचकताई । कहहु काह निज निज मति भाई ।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । ससि महँ प्रगट भूमि कै झाँई ।
मारेउ राहु ससिहि कह कोई । उर महं परी स्यामता सोई ।
कोउ कह जब बिधि रतिमुख कीन्हा । सार भाग ससिकर हरि लीन्हा ।
छिद्र सो प्रगट इंदुउर माहीं । तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं ।
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा । अतिप्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ।
बिषयुत करनिकर पसारी । जारत बिरहवंत नरनारी ।
दो०—कह मारुतसुत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार निज दास ।
तव मूरति बिधुउर बसति, सोइ स्यामताअभास ॥ १६ ॥
पवनतनय के बचन सुनि, बिहँसे राम सुजान ।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु, बोले कृपानिधान ॥ १७ ॥

देखु बिभीषन दच्छिन आसा । घन घमंड दामिनी बिलासा ।
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा । होइ बृष्टि जनु उपल कठोरा ।
कहइ बिभीषन सुनहु कृपाला । तड़ित न होइ न बारिदमाला ।
लंकासिखर रुचिर आगारा । तहँ दसकंधर देख अखारा ।
छत्र मेघडंबर सिर धारी । सोइ जनु जलदघटा अति कारी ।
मंदोदरी - स्रवन - ताटंका । सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ।
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा । सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा ।
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना । चाप चढ़ाइ बान संधाना ।

दो०—छत्र मुकुट ताटंक तब, हते एकहीं बान।
सब के देखत महि परे, मरम न कोऊ जान ॥ १८ ॥
अस कौतुक करि रामसर, प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावनसभा ससंक सब, देखि महा-रस-भंग ॥ १९ ॥

कंप न भूमि न मरुत बिसेखा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा।
सोचहिं सब निज हृदय मँझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी।
दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहँसि बचन कह जुगुति बनाई।
सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट खसे कस असगुन ताही।
सयन करहु निज निज गृह जाही। गवने भवन सकल सिर नाई।
इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई।
कहहु बेगि का करिय उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई।
सुनु सर्बज्ञ सकल-उर-बासी। बुधि बल तेज धर्म गुनरासी।
मंत्र कहउँ निज-मति-अनुसारा। दूत पठाइय बालिकुमारा।
नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना।
बालितनय बुधि-बल-गुन-धामा। लंका जाहु तात मम कामा।
बहुत बुझाइ तुम्हहिं का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ।
काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई।

सो०—प्रभुअज्ञा धरि सीस, चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुनसागर ईस, राम कृपा जा पर करहु ॥ २० ॥
स्वयंसिद्ध सब काज, नाथ मोहि आदर दियेउ।
अस बिचारि जुवराज, तनु पुलकित हरषित हिये ॥२१॥

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहिं सिरु नाई।
प्रभुप्रताप उर सहज असंका। रनबाँकुरा बालिसुत बंका।
पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गइ भेंटा।
बातहिं बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई।
तेहिं अंगद कहँ लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई।

निसि-चर-निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिँ पुकारी।
एक एक सन मरम न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं।
भयउ कोलाहल नगर मँझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी।
अब धौं काह करिहि करतारा। अतिसभीत सब करहिँ बिचारा।
बिनु पूछे मग देहिँ देखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई।

दो०—गयउ सभादरबार तब, सुमिरि राम पद-कंज।
सिंहठवनि इत उत चितव, धीर - बीर - बल-पुंज ॥ २२ ॥

तुरित निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहिँ जनावा
सुनत बिहँसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा
आयसु पाइ दूत बहु धाये। कपिकुंजरहि बोलि लेइ आये
अंगद दीख दसानन बैसा। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा
भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरिकंदरा खोह अनुमाना
गयउ सभा मन नेकु न मुरा। बालितनय अतिबल बाँकुरा
उठे सभासद कपि कहँ देखी। रावनउर भा क्रोध बिसेखी

दो०—जथा मत्तगज जूथ महँ, पंचानन चलि जाइ।
रामप्रताप सँभारि उर, बैठ सभा सिरु नाइ॥ २३ ॥

कह दसकंठ कवन तैँ बंदर। मैं रघु - बीर - दूत दसकंधर।
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हितकारन आयउँ भाई।
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती।
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा।
नृपअभिमान मोहबस किंबा। हरि आनेहु सीता जगदंबा।
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा।
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजनसहित संग निज नारी।
सादर जनकसुता करि आगे। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे।

दो०—प्रनतपाल रघु-बंस-मनि, त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करहिँगे तोहि ॥ २४ ॥
रे कपिपोत न बोल सँभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी।
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नाते मानिये मिताई।
अंगद नाम बालि कर बेटा। ता सोँ कबहुँ भई होइ भेँटा।
अंगदवचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना।
अंगद तहीँ बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुलघालक।
गर्भ न गयउ व्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापसदूत कहायहु।
अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई।
दिन दस गये बालि पहँ जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई।
रामबिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई।
सुनु सठ भेद होइ मन ता के। श्री-रघु-बीर हृदय नहिँ जा के।
दो०—हम कुलघालक सत्य तुम्ह, कुलपालक दससीस।
अँधउ बहिर न अस कहहिँ, नयन कान तव बीस ॥ २५ ॥
सिव - बिरंचि-सुर-मुनि-समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई।
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। ऐसिहु मति उर बिहरु न तोरा।
सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी।
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ।
कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहु सुनी कृत पर-त्रिय-चोरी।
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म-व्रत-धारी।
कान नाक बिनु भगनि निहारी। छमा कीन्ह तुम्ह धर्म बिचारी।
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरस हमहुँ बड़भागी।
दो०—जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु।
लोक-पाल-बल-बिपुल-ससि, ग्रसन हेतु सब राहु ॥ २६ ॥
पुनि नभसर मम कर-निकर, कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भयउ मराल इव, संभुसहित कैलास ॥ २७ ॥

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद॥
तव प्रभु नारिविरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥
तुम्ह सुग्रीवँ कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समर अरूढ़ा॥
सिल्पकर्म जानहिँ नल नीला। है कपि एक महा-बल-सीला॥
आवा प्रथम नगर जेहि जारा। सुनि हँसि बोलेउ बालिकुमारा॥
सत्य वचन कहु निसि-चर नाहा। साँचेहु कीस कीन्ह पुरदाहा॥
रावननगर अलप कपि दहई। सुनि अस वचन सत्य को कहई॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीवँ केर लघु धावन॥
चलइ बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई॥

दो०—सत्य नगर कपि जारेऊ, बिनु प्रभुआयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीवँ पहिँ, तेहि भय रहा लुकाइ॥ २८॥
सत्य कहेहु दसकंठ अब, मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारे कटक अस, तो सन लरत जो सोह॥ २९॥
प्रीति विरोध समान सन, करिय नीति असि आहि।
जौँ मृगपति बध मेडुकन्हि, भल कि कहइ कोउ ताहि॥ ३०॥
जद्यपि लघुता राम कहँ, तोहि बधे बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु, छत्रिजाति कर रोष॥ ३१॥
वक्रउक्ति धनु वचन सर, हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रति उत्तर सडसिन्ह मनहुँ, काढ़त भट दससीस॥ ३२॥
हँसि बोलेउ दसमौलि तब, कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित, करइ उपाय अनेक॥ ३३॥

धन्य कीस जो निज-प्रभु-काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करइ धर्म निपुराई॥
अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभुगुन कस न कहसि एहि भाँती॥
मैं गुनगाहक परम- सु -जाना। तव कटु रटनि करउँ नहिँ काना॥

कह कपि तव गुनगाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई।
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा।
सोइ विचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर मैं कीन्ह ढिठाई।
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरे लाज न रोष न माषा।
जौं असि मति पितु खायेहु कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा।
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही।
बालि-बिमल-जस-भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी।
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते।
बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखा बाँधि सिसुन्ह हयसाला।
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई।
एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतुबिसेखा।
कौतुक लागि भवन लेइ आवा। सो पुलस्ति मुनि जाय छोड़ावा।
दो०—एक कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख।
तिन्ह महुँ रावन तैं कवन, सत्य बदहि तजि माख॥ ३४॥
सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुजलीला।
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई।
सिरसरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी।
भुजबिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूं जिन्ह के उर साला।
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरेउँ जाइ बरिआई।
जिन्ह के दसन करालन फूटे। उर, लागत मूलक इव टूटे।
जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्तगज जिमि लघु तरनी।
सोइ रावन जगविदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवन अलीकप्रलापी।
दो०—तेहि रावन कहँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल, अब जाना तव ज्ञान॥ ३५॥
सुनि अंगद, सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभमानी।
सहस-बाहु-भुज-गहन अपारा। दहन अनलसम जासु कुठारा।

जासु परसु-सागर-खर-धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा।
तासु गर्व जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा।
रामु मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा।
पसु सुरधेनु कलपतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूखा।
बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपलि दसानन।
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभु कि रघु-पति-भगति अकुंठा।
दो—सेनसहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयउ जो तव सुत मारि॥ ३६॥
सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई।
जौं खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राख न तोही।
मूढ़ वृथा जनि मारसि गाला। रामबैर होइहि अस हाला।
तव सिर निकर कपिन्ह के आगे। परिहहिं धरनि रामसर लागे।
ते तव सिर कंदुक इव नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना।
जबहिं समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक।
तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा।
सुनत बचन रावनु परजरा। जरत महानल जनु घृत परा।
दो०—कुंभकरन अस बंधु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि, जितेउँ चराचर झारि॥ ३७॥
सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई।
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु जड़ कीसा।
मम भुज-सागर- बल - जल-पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा।
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।
दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजसु खल मोहि सुनावा।
जौं पै समरसुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुनगाथा।
तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा।
हर-गिरि-मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू।

दो०—सूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेहि सीस ।
हुने अनल महँ बार बहु, हरषि साखि गौरीस ॥ ३८ ॥
जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला । बिधि के लिखे अंक निज भाला ।
नर के कर आपन बध बाँची । हँसेउँ जानि बिधिगिरा असाँची ।
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरे । लिखा बिरंचि जरठमति भोरे ।
आन बीरबल सठ मम आगे । पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागे ।
कह अंगद सलज्ज जग माहीं । रावन तोहि समान कोउ नाहीं ।
लाजवंत तव सहज सुभाऊ । निज मुख निज गुन कहसि न काऊ ।
सिर अरु सैल कथा चित रही । ता तें बार बीस तैं कही ।
सो भुजबल राखेहु उर घाली । जीतेहु सहसबाहु बलि बाली ।
सुनु मतिमंद देहि अब पूरा । काटे सीस कि होइय सूरा ।
इंद्रजालि कहँ कहिय न बीरा । काटइ निज कर सकल सरीरा ।
दो०—जरहिं पतंग बिमोहबस, भार बहहिं खरबृंद ।
ते नहिं सूर कहावहिं, समुझि देखु मतिमंद ॥ ३९ ॥
अब जनि बत बढ़ाव खल करही । सुनु मम बचन मान परिहरही ।
दसमुख मैं न बसीठी आयेउ । अस बिचारि रघुबीर पठायेउ ।
बार बार असि कहइ कृपाला । नहिं गजारि जस बधे सृगाला ।
मन महँ समुझि बचन प्रभु केरे । सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे ।
नाहिं त करि मुखभंजन तोरा । लेइ जातेउँ सीतहिं बरजोरा ।
जानेउँ तव बल अधम सुरारी । सूने हरि आनेहि परनारी ।
तैं निसि-चर-पति गर्बबहूता । मैं रघु-पति-सेवक कर दूता ।
जौं न रामअपमानहिं डरऊँ । तोहि देखत अस कौतुक करऊँ ।
दो०—तोहि पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ ।
तव जुवतीन्ह समेत सठ, जनकसुतहि लेइ जाउँ ॥ ४० ॥
जौं अस करउँ तदपि न बड़ाई । मुयेहि बधे कछु नहिँ मनुसाई ।
कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा । अतिदरिद्र अजसी अतिबूढ़ा ।

सदा रोगबस संततक्रोधी । विष्णुविमुख स्रुति-संत-विरोधी ।
तनुपोषक निंदक अघखानी । जीवत सवसम चौदह प्रानी ।
अस विचारि खल बधउँ न तोही । अब जनि रिस उपजावसि मोही ।
सुनि सकोप कह निसि-चर-नाथा । अधर दसन दसि मींजत हाथा ।
रे कपिअधम मरन अब चहसी । छोटे बदन बात बड़ि कहसी ।
कटु जलपसि जड़ कपि बल जाके । बल प्रताप बुधि तेज न ता के ।

दो० —अगुन अमान विचारि तेहि, दीन्ह पिता बनबास ।
सो दुख अरु जुवतीविरह, पुनि निसि दिन मम त्रास ॥ ४१ ॥
जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि, ऐसे मनुज अनेक ।
खाहिँ निसाचर दिवस निसि, मूढ़ समुझु तजि टेक ॥ ४२ ॥

जब तेहि कीन्ह राम कै निंदा । क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा ।
हरि-हर-निंदा सुनइ जो काना । होइ पाप गो - घात - समाना ।
कटकटान कपिकुंजर भारी । दुहुँ भुजदंड तमकि महि मारी ।
डोलत धरनि सभासद खसे । चले भागि भय मारुत ग्रसे ।
गिरत सँभारि उठा दसकंधर । भूतल परे मुकुट अति सुंदर ।
कछु तेहि लेइ निज सिरन्हि सँवारे । कछु अंगद प्रभुपास पवारे ।
आवत मुकुट देखि कपि भागे । दिनहीँ लूक परन विधि लागे ।
की रावन करि कोप चलाये । कुलिस चारि आवत अति धाये ।
कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू । लूक न असनि केतु नहिँ राहू ।
ए किरीट दसकंधर केरे । आवत बालितनय के प्रेरे ।

दो०—तरकि पवनसुत कर गहेउ, आनि धरे प्रभुपास ।
कौतुक देखहिँ भालु कपि, दिन-कर-सरिस प्रकास ॥ ४३ ॥
उहाँ सकोप दसानन, सब सन कहत रिसाइ ।
धरहु कपिहि धरि मारहु, सुनि अंगद मुसुकाइ ॥ ४४ ॥

एहि बधि बेगि सुभट सब धावहु । खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु ।
मरकटहीन करहु महि जाई । जिअत धरहु तापस दोउ भाई ।

पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा।
मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती।
रे त्रियचोर कु-मारग-गामी। खल मलरासि मंदमति कामी।
सन्निपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल मनुजादा।
या को फल पावहुगे आगे। बानर-भालु-चपेटन्हि लागे।
राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी।
गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। सिरन्हि समेत समरमहि माहीं।

सो०—सो नर क्यों दसकंध, बालि बधेहु जेहि एक सर।
बीसहु लोचन अंध, धिग तव जनम कुजाति जड़ ॥ ८५ ॥

तव सोनित की प्यास, तृषित राम-सायक-निकर।
तजउँ तोहि तेहि त्रास, कटुजल्पक निसिचर अधम ॥८६॥

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक।
अस रिसि होति दसउ मुख तोरउँ। लंका गहि समुद्र महँ बोरउँ।
गूलर-फल-समान तव लंका। बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका।
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा।
जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सीख कहँ बहुत झुठाई।
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भयसि लबारा।
साँचेहु मैं लबार भुजबीहा। जौं न उपारउँ तव दस जीहा।
समुझि रामप्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा।
जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं राम सीता मैं हारी।
सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा।
इंद्र-जीत-आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना।
झपटहि करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ बैठहि सिरु नाई।
पुनि उठि झपटहिं सुरआराती। टरइ न कीसचरन एहि भाँती।
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोहबिटप नहिं सकहिं उपारी।

दो०—कोटिन्ह मेघ-नाद-सम, सुभट उठे हरखाइ।
झपटहिं टरइ न कपिचरन, पुनि बैठहिं सिर नाइ ॥४७॥

भूमि न छाड़त कपिचरन, देखत रिपुमद भाग।
कोटिविघ्न तें संत कर, मन जिमि नीति न त्याग ॥४८॥

कपिबल देखि सकल हिय हारे। उठा आपु कपि के परचारे।
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा।
गहसि न रामचरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई।
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्यदिवस जिमि ससि सोहई।
सिंहासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गवाँई।
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिस्रामा।
उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा।
तृन तें कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूतपन कहु किमि टरई।
पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताखु काल नियराना।
रिपुमद मथि प्रभु-सु-जस सुनायो। यह कहि चलेउ बालि-नृप-जायो।
हतउँ न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करउँ बड़ाई।
प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा।
जातुधान अंगदपन देखी। भय ब्याकुल सब भये बिसेखी।

दो०—रिपुबल धरषि हरषि कपि, बालि तनय बलपुंज।
पुलक शरीर नयन जल, गहे राम-पद-कंज ॥४९॥

रिपु के समाचार जब पाये। रामसचिव सब निकट बोलाये।
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिय करहु बिचारा।
तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदय दिनकर-कुलभूषन।
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपिकटक बनावा।
जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे।
प्रभुप्रताप कहि सब समुझाये। सुनि कपि सिंहनाद करि धाये।
हरषित रामचरन सिर नावहिं। गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं।

गर्जहिं तर्जहिं भालु कपोसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा।
जानत परमदुर्ग अति लंका। प्रभुप्रताप कपि चले असंका।
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी।

दो०—जयति राम जय लछिमन, जय कपीस सुग्रीवँ।
गर्जहिं केहरिनाथ कपि, भालु महा-बल-सीवँ॥ ५०॥

लंका भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहँकारी।
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसा-चर-सेन बोलाई।
आये कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे।
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा।
सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू।
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना।
चले निसाचर आयसु माँगी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी।
तोमर मुग्दर परिघ प्रचंडा। सूल कृपान परसु गिरिखंडा।
जिमि अरुनोपलनिकर निहारा। धावहिं सठ खग मांसअहारी।
चोंच-भंग-दुख तिन्हहिं न सूझा। तिमि धाये मनुजाद अबूझा।

दो०—नानायुध सर-चाप-धर, जातुधान बलबीर।
कोटकँगूरनि चढ़ि गये, कोटि कोटि रनधीर॥ ५१॥

कोटकँगूरन्हि सोहहिँ कैसे। मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे।
बाजहिँ ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होय भटन्ह मन चाऊ।
बाजहिँ भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादरउर जाहिँ दरारा।
देखि न जाइ कपिन्ह के ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा।
धावहिँ गनहिँ न अवघट घाटा। पर्वत फोरि करहिँ गहि बाटा।
कटकटाहिँ कोटिन्ह भट गर्जहिँ। दसन ओठ काटहिँ अति तर्जहिँ।
उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई।
निसिचर सिखरसमूह ढहावहिं। कूदि धरहिँ कपि फेरि चलावहिं।

छंद—धरि कु-धर-खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिँ चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि प्रचारहीं॥
अतितरल तरुन प्रताप तर्जहिँ तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गये।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्हि जहँ तहँ रामजसु गावत भये॥

दो०—एक एक गहि निसिचर, पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपुनु हेठ भट, गिरहिँ धरनि पर आइ॥ ५२॥
बहु-आयुध-धर सुभट सब, भिरहिँ प्रचारि प्रचारि।
कीन्हे ब्याकुल भालु कपि, परिघ त्रिसूलन्ह मारि॥ ५३॥
अंगद सुनेउ कि पवनसुत, गढ़ पर गयउ अकेल।
समरबाँकुरा बालिसुत, तरकि चढ़ेउ कपि खेल॥ ५४॥

जुद्धविरुद्ध क्रुद्ध दोउ बानर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर।
रावनभवन चढ़े दोउ धाई। करहिँ कोसलाधीसदोहाई।
कलससहित गहि भवन ढहावा। देखि निसा-चर-पति भय पावा।
नारिबृंद कर पीटहि छाती। अब दुइ कपि आये उतपाती।
कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजस सुनावहिं।
पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिय उतपात अरंभा।
गर्जि परे रिपुकटक मँझारी। लागे मर्दइ भुजबल भारी।
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहिँ सो फल लेहू।

दो०—एक एक सोँ मर्दहिँ, तोरि चलावहिँ मुंड।
रावन आगे परहिँ ते, जनु फूटहिँ दधिकुंड॥ ५५॥
भुजबल रिपुदल दलमलि, देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत स्रम, आये जहँ भगवंत॥ ५६॥

निसा जानि कपि-चारिउ-अनी। आये जहाँ कोसलाधनी।
राम कृपा करि चितवा जबहीं। भये बिगतस्रम बानर तबहीं।
उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे।
आधा कटक कपिन्ह संहारा। कहहु बेगि का करिय बिचारा।

माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावनु-मातु-पिता-मंत्री-वर।
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन।
जब तें तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिँ न जाहिँ बखानी।
बेद पुरान जासु जस गावा। रामबिमुख काहु न सुख पावा।
परिहरि बैर देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परमसनेही।
ता के बचन बानसम लागे। करियामुख करि जाहि अभागे।
बूढ़ भयसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही।
तेहि अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना।
सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा।
कौतुक प्रात देखियहु मोरा। करिहउँ बहुत कहउँ का थोरा।
सुनि सुतबचन भरोसा आवा। प्रीतिसमेत अंक बैठावा।
करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा।
कोपि कपिन्ह दुरघट गढ़ घेरा। नगर कोलाहल भयउ घनेरा।
बिबिधायुधधर निसिचर धाये। गढ़ तें पर्बतसिखर ढहाये।

दो०—मेघनाद सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतरि दुर्ग तें बीर बर, सनमुख चलेउ बजाइ॥ ५७॥

दस दस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद करि गर्जा, मेघनाद बलधीर॥ ५८॥

आयुस माँगि राम पहिँ, अंगदादि कपि साथ।
लछमन चले सकोप अति, बान सरासन हाथ॥ ५९॥

छत-ज-नयन उर बाहु बिशाला। हिम-गिरि-निभ तनु कछुएक लाला।
इहाँ दसानन सुभट पठाये। नाना सस्त्र अस्त्र गहि धाये।
भू-धर-नख-बिटपायुध धारी। धाये कपि जय राम पुकारी।
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहिँ थोरी।
मुठिकन्ह लातन्ह दाँतन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं।
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू।

अस रव पूर रहा नव खंडा। धावहिँ जहँ तहँ रुंड प्रचंडा।
देखहिँ कौतुक नभ सुरबृंदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा।

दो०—रुधिर गाढ़ भरि भरि जमेउ, ऊपर धूरि उड़ाइ।
जिमि अँगार-रासीन्ह पर, मृतकधूम रह छाइ॥ ९०॥

घायल बीर बिराजहिँ कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे।
लछिमन मेघनाद दोउ जोधा। भिरहिँ परस्पर करि अति क्रोधा।
एकहिँ एक सकहिँ नहिँ जीती। निसिचर छल बल करइ अनीती।
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता।
नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान अवसेषा।
रावनसुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहि मम प्राना।
बीरघातिनी छाड़ेसि साँगी। तेजपुंज लछिमनउर लागी।
मुरछा भई सक्ति के लागे। तब चलि गयउ निकट भय त्यागे।

दो०—मेघ-नाद-सम-कोटिसत, जोधा रहे उठाय।
जगदाधार अनंत किमि, उठइ चले खिसिआय॥ ९१॥

सुनि गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारि दस आसू।
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुर नर अग जग जाही।
यह कौतूहल जानइ सोई। जापर कृपा राम कै होई।
संध्या भई फिरी दोउ बाहिनी। लगे सँभारन निज निज अनी।
ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमनु कहाँ बूझ करुनाकर।
तब लगि लेइ आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना।
जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रहइ को पठइय लेना।
धरि लघुरूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवनसमेत तुरंता।

दो०—रघु-पति-चरन-सरोज सिरु, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी, जाहु पवनसुत लेन॥ ९२॥

राम-चरन-सरसि-ज उर राखी। चलेउ प्रभंजनसुत बल भाखी।
देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा।

गहि गिरि निसि नभ ऊपर गयऊ । तुरत राम पहँ धावत भयऊ ।
उहाँ राम लछिमनहिं निहारी । बोले वचन मनुजअनुहारी ।
अर्धराति गइ कपि नहिं आयउ । राम उठाइ अनुज उर लायउ ।
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ । बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ ।
मम हित लागि तजेहु पितु माता । सहेउ बिपिन हिम आतप बाता ।
सो अनुराग कहाँ अब भाई । उठहु न सुनि मम बचबिकलाई ।
जौं जनतेउँ बन बंधुबिछोहू । पितावचन मनतेउँ नहिं ओहू ।
सुत बित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।
अस बिचारि जिय जागहु ताता । मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ।
जथा पंख बिनु खग अति दीना । मनि बिनु फनि करिबर करहीना ।
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही । जौं जड़ दैव जियावइ मोही ।
जैहउँ अवध कवन मुँह लाई । नारिहेतु प्रियभाइ गवाँई ।
बरु अपजसु सहतेउँ जग माहीं । नारि हानि बिसेष छति नाहीं ।
अब अपलोक सोक सुत तोरा । सहिहि निठुर कठोर उर मोरा ।
निज जननी के एक कुमारा । तात तासु तुम्ह प्रान अधारा ।
सैांपेसि मोहि तुम्हहिं गहि पानी । सब बिधि सुखद परम हित जानी ।
उतरु काह देहउँ तेहि जाई । उठि किन मोहि सिखावहु भाई ।
बहु बिधि सोचत सोचबिमोचन । स्रवत सलिल राजिव दल-लोचन ।
उमा एक अखंड रघुराई । नरगति भगतकृपालु देखाई ।

सो०—प्रभु बिलाप सुनि कान, बिकल भये बानर निकर ।
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुना महँ बीर रस ॥६३॥

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना । अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना ।
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई । उठि बैठे लछिमन हरषाई ।
हृदय लाइ भेंटेउ प्रभु भ्राता । हरषे सकल भालु-कपि-ब्राता ।
पुनि कपि बैद तहाँ पहुँचावा । जेहि बिधि तबहिं ताहि लेइ आवा ।
यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ । अतिबिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ ।

व्याकुल कुंभकरन पहिँ आवा। विविध जतन करि ताहि जगावा।
जागा निसिचर देखिय कैसा। मानहुँ काल देह धरि बैसा।
कुंभकरन बूझा सुनु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई।
कथा कही सब तेहि अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी।
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा - महा - जोधा संहारे।
दुर्मुख सुररिपु अनुजअहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी।
अपर महोदर आदिक वीरा। परे समरमहि सब रनधीरा।

दो०—सुनि दस-कंधर-वचन तव, कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब, सठ चाहत कल्यान॥ ६४॥

भल न कीन्ह तैं निसि-चर-नाहा। अब मोहि आइ जगावेहि काहा।
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना।
हैं दससीस मनुज रघुनायक। जा के हनूमान से पायक।
अहह बंधु तैं कीन्ह खोटाई। प्रथमहि मोहि न सुनायेहि आई।
कीन्हेहु प्रभु विरोध तेहि देवक। सिव विरंचि सुर जाके सेवक।
नारद मुनि मोहि ज्ञान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरवहा।
अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करउँ मैं जाई।
श्यामगात सरसी-रुह-लोचन। देखउँ जाइ ताप-त्रय-मोचन।

दो०—राम-रूप-गुन सुमिर मन, मगन भयउ छन एक।
रावन माँगेउ कोटि घट, मद अरु महिष अनेक॥ ६५॥

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा वज्राघातसमाना।
कुंभकरन रनरंग विरुद्धा। सनमुख चला काल जनु क्रुद्धा।
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीडी गिरिगुहा समाई।
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मींजि मिलव महि गर्दा।
मुख नासा स्रवनन्हि की बाटा। निसरि पराहिं भालु-कपि-ठाटा।
रन-मद-मत्त निसाचर दर्पा। विस्व ग्रसिहि जनु एहि विधि अर्पा।
मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे।

कुंभकरन कपि फौज विडारी। सुनि धाई रजनी-चर-धारी।
देखी राम विकल कटकाई। रिपुअनीक नाना विधि आई।

दो०—सुनु सुग्रीवँ विभीषन, अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल-बल-दलहि, बोले राजिवनैन ॥ ६६ ॥

कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि-दल-दलनि चले रघुनाथा।
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टकोरा। रिपुदल बधिर भयउ सुनि सोरा।
सत्यसंध छाड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा।
जहँ तहँ चले विपुल नाराचा। लगे कटन भट विकट पिसाचा।
कटहिँ चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक वीर होहिँ सत खंडा।
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं।
लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं।
रुंड प्रचंड मुंड विनु धावहिँ। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिँ।

दो०—छन महँ प्रभु के सायकन्हि, काटे विकट पिसाच।
पुनि रघुवीर निषंग महँ, प्रविसे सब नाराच ॥ ६७ ॥

कुंभकरन मन दीख विचारी। हति छन माँझ निसा-चर-धारी।
भयउ क्रुद्ध दारुन बल वीरा। करि मृग-नायक-नाद गँभीरा।
कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मर्कट भट भारी।
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रजसम करि डारे।
पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाड़े अति कराल बहु सायक।
तन महँ प्रविसि निसरि सर जाहीं। जनु दामिनि घन माँझ समाहीं।
सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जलगिरि गेरु पनारे।
विकल विलोकि भालु कपि धाये। विहँसा जबहिं निकट कपि आये।

दो०—महानाद करि गर्जा, कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकइ गजराज इव, सपथ करइ दससीस ॥ ६८ ॥

भागे भालु - बलीमुख - जूथा। वृक विलोकि जिमि मेष-बरूथा।
चले भागि कपि भालु भवानी। विकल पुकारत आरतबानी।

यह निसिचर दुकाल-सम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई।
कृपा-बारि-धर-राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारतिहारी।
स-करुन-बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना।
राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा-बल-साली।
खैंचि धनुष सर सत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने।
लागत सर धावा रिसभरा। कुधर डगमगत डोलति धरा।
लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी। रघु-कुल-तिलक भुजा सोइ काटी।
धावा बाम बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी।
काटे भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मंदरगिरि जैसा।
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रयलोका।

दो०—करि चिक्कार घोर अति, धावा बदन पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित, हा हा हेति पुकारि॥ ६९॥

सभय देव करुनानिधि जानेउ। स्रवन प्रजंत सरासन तानेउ।
बिसिख निकर निसि-चर-मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ।
सरन्हि भरामुख सनमुख धावा। कालत्रोन सजीव जनु आवा।
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। धर तें भिन्न तासु सिर कीन्हा।
सो सिर परेउ दसानन आगे। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागे।
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा।
परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर।
तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभा माना।
रामकृपा कपिदल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा।
छीजहिं निसिचर दिन अरु राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती।
बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधुसीस पुनि पुनि उर धरई।
रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी।
मेघनाद तेहि अवसर आवा। कहि बहु कथा पिता समुझावा।
देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करउँ बड़ाई।

इष्टदेव सौं बल रथ पायउँ। सो बल तात न तोहि देखायउं।
एहि विधि जल्पत भयउ विहाना। चहु दुआर लागे कपि नाना।
इत कपि भालु कालसम बीरा। उत रजनीचर अति-रन-धीरा।
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू।

दो०—मेघनाद मायामय, रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि, भइ कपि-कटकहि त्रास॥ ७०॥

सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना।
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करइ बहु बाना।
दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झर लाई।
धरु धरु मारि सुनिय धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना।
गहिगिरितरुअकासकपिधावहिं। देखहिं तेहि नदुखितफिरि आवहिं।
अवघट घाट बाट गिरि कंदर। मायाबल कीन्हेसिं सरपंजर।
जाहिं कहाँ भये ब्याकुल बंदर। सुरपति बंदि परे जनु मंदर।
मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला।
पुनि लछिमन सुग्रीवँ बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जरतन।
पुनि रघुपति सन जूझइ लागा। सर छाड़इ होइ लागहिं नागा।
ब्याल-पास बस भयउ खरारी। स्वबस अनंत एक अबिकारी।
ब्याकुल कटक कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा।
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा।
बूढ़ जानि सठ छाड़ेउं तोही। लागेसि अधम प्रचारइ मोही।
अस कहि तीब्र त्रिसूल चलावा। जामवंत सो कर गहि धावा।
मारेसि मेघनाद कै छाती। परा धरनि घुर्मित सुरघाती।
पुनि रिसान गहि चरन फिरावा। महि पछारि निज बल देखरावा।
बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा।
इहाँ देवरिषि गरुड़ं पठावा। रामसमीप सपदि सो आवा।

दो० – खगपति सब धरि खाये, माया-नाग-बरूथ।
माया बिगत भये सब, हरषे बानरजूथ॥ ७१॥

गहि गिरि पादप उपल नख, धाये कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर, गढ़ पर चढ़े पराइ॥ ७२॥

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयेउ गिरि-बर-कंदरा। करउँ अजय मख अस मन धरा॥
इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देवसतावन॥
जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना॥
लछिमन संग जाउ सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही॥
मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहि छीजइ निसिचर सुनु भाई॥
जामवंत सुग्रीवँ बिभीषन। सेन समेत रहेहु तीनिउँ जन॥
जब रघुबीर दीन्ह अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन॥
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा॥
जौं तेहि आजु बधे बिन आवउँ। तौ रघु-पति-सेवक न कहावउँ॥
जौं सत संकर करहि सहाई। तदपि हतउँ रघु-बीर-दोहाई॥

दो०—रघु-पति-चरन नाइ सिर, चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल, संग सुभट हनुमंत॥ ७३॥

जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥
तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥
लेइ त्रिसूल धावा कपि भागे। आये जहँ रामानुज आगे॥
आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोररव बारहिं बारा॥
कोपि मरुतसुत अंगद धाये। हति त्रिसूल उर धरनि गिराये॥

प्रभु कहँ छाड़ेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनंत जुग खंडा।
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा।
फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा।
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला।
देखिस आवत पबिसम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना।
बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई।
देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा।
एहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा। लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा।
सुमिरि कोसला-धीस-प्रतापा। सरसंधान कीन्ह करि दापा।
छाँड़ेउ बान माँझ उर लागा। मरती बार कपट सब त्यागा।

दो०—रामानुज कहँ राम कहँ, अस कहि छाड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान॥ ७४॥

सुतबध सुना दसानन जबहीं। मुरछित भयउ परेउ महि तबहीं।
मंदोदरी रुदन करि भारी। उर ताड़त बहु भाँति पुकारी।
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधर पोचा।
तिन्हहिं ज्ञान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ भावन।
परउपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे।
निसा सिरानि भयउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा।
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रनसनमुख जाकर मन डोला।
सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुगबिमुख भये न भलाई।
निज-भुज-बल मैं बैर बढ़ावा। देइहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा।
अस कहि मरुतबेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा।
चलेउ निसा-चर-कटक अपारा। चतुरंगिनी अनी बहुधारा।
बिबिध भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना।
चले मत्त गजजूथ घनेरे। प्राबिट-जल-द मरुत जनु प्रेरे।
बरन बरन बिरदैत निकाया। समरसूर जानहिं बहु माया।

अति बिचित्र वाहनी बिराजी। वीर बसंत सेन जनु साजी।
चलत कटकु दिगसिंधुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं।
उठी रेनु रवि गयउ छुपाई। पवन थकित बसुधा अकुलाई।
पनव निसान घोररव बाजहिँ। प्रलयसमय के घन जनु गाजहिँ।
भेरि नफीर बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई।
केहरिनाद वीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं।
कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा।
हौं मारिहउं भूप दोउ भाई। अस कहि सनमुख फौज रेंगाई।
यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाये करि रघु-वीर-दोहाई।

दो०—दुहुं दिसि जय जय कार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे वीर इत रघुपतिहिं, उत रावनहिं बखानि ॥ ७५ ॥

रावन रथी बिरथ रघुवीरा। देखि बिभीखन भयउ अधीरा।
अधिकप्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा।
नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना। केहि बिधि जितब वीर बलवाना।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईसभजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। वर बिज्ञान कठिन कोदंडा।
अमल अचल मन त्रोनसमाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद बिप्र-गुरु-पूजा। एहि सम बिजयउपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जा के। जीतन कहं न कतहुं रिपु ताके।

दो०—महा अजय संसाररिपु, जीति सकइ सो वीर।
जा के अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥ ७६ ॥

उत प्रचार दसकंधर, इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि, करि निज निज प्रभु आन ॥ ७७ ॥

देवन्ह प्रभुहिं पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेखा।
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरषसहित मातलि लेइ आवा।
तेजपुंज रथ दिव्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसल-पुर-भूपा।
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन-सम-गति-कारी।
रथारूढ़ रघुनाथहिं देखी। धाये कपि बल पाइ बिसेखी।
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी।
सो माया रघुबीरहि बाँची। सब काहू मानी करि साँची।
देखी कपिन्ह निसा-चर अनी। अनुजसहित बहु कोसलधनी।

छंद—बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्रलिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिँ खरे।
निज सेन चकित बिलोक हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महँ हरषी सकल मरकट अनी॥

दो०—बहुरि राम सब तन चितइ, बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखेहु सकल, स्रमित भये अति बीर॥ ७८॥

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र-चरन-पंकज सिरु नावा।
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सनमुख आवा।
जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं।
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जा के बंदीखाना।
खर-दूषन-कबंध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा।
निसि-चर-निकर सुभट संहारेहु। कुंभकरन घननादहिँ मारेहु।
आजु बैरु सब लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिँ जाही।
आजु करउँ खलु कालहवाले। परेहु कठिन रावन के पाले।
सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना।
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जलपसि जनि देखाउ मनुसाई।

दो०—रामबचन सुनि बिहँसि कह, मोहि सिखावत ज्ञान।
बैरु करत नहिँ तब डरेहु, अब लागे प्रिय प्रान॥ ७९॥

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिससमान लाग छाड़इ सर।
नानाकार सिलीमुख धाये। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाये।
अनलबान छाड़ेउ रघुबीरा। छन महँ जरे निसाचर-तीरा।
छाड़ेसि तीव्र सक्ति खिसिआई। बानसंग प्रभु फेरि पठाई।
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारइ। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ।
निफल होहिं रावनसर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे।
तब सतबान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि।
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परमक्रोध कहँ पावा।

छंद—भये क्रुद्ध जुद्धबिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंडधुनि अतिचंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे।
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

दो०—तानेउ चाँप स्रवन लगि, छाड़े बिसिख कराल।
राम-मारगन-गन चले, लहलहात जनु ब्याल॥ ८०॥

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा।
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका।
तुरत आन रथ चढ़ि खिसियाना। अस्त्र सस्त्र छाड़ेसि बिधि नाना।
बिफल होहिं सब उद्यम ता के। जिमि पर-द्रोह-निरत-मनसा के।
तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा।
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाड़े सायक।
रावन-सिर-सरोज-बन-चारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी।
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गये चले रुधिरपनारे।
स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु-सर-संधाना।
तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्ह समेत सीस महि पारे।
काटतहीं पुनि भये नबीने। राम बहारि भुजा सिर छीने।
काटत झटिति पुनि नूतन भये। प्रभु बहु बार बाहु सिर हये।

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अतिकौतुकी कोसलाधीसा।
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुं अमित केतु अरु राहू।

दो०—जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत विषय विवर्ध जिमि, नित नित नूतन मार॥ ८०॥

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।
मरइ न रिपु स्रम भयउ बिसेखा। राम बिभीषन तन तब देखा।
उमा काल मरु जा की ईछा। सोइ प्रभु जन कर प्रीतपरीछा।
सुनु सर्बग्य चराचरनायक। प्रनतपाल सुर-मुनि-सुख-दायक।
नाभीकुंड सुधा बस या के। नाथ जियत रावन बल ता के।
सुनत बिभीषनवचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला।
असगुन होन लगे तब नाना। रोवहिं बहु सृगाल खर स्वाना।
बोलहिं खग जग-आरति-हेतू। प्रगट भये नभ जहँ तहं केतू।
दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रविउपरागा।
मंदोदरी उर कंपित भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयनमग बारी।

छंद—प्रतिमा स्रवहिं पबि पात नभ अतिबात बहु डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही।
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जयं।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भये॥

दो० खैंचि सरासन स्रवन लगि, छाड़े सर एकतीस।
रघु-नायक-सायक चले, मानहुं काल फनीस॥ ८१॥

सायक एक नाभसर सोखा। अपर लगे सिर भुज करि रोखा।
लेइ सिर बाहु चले नाराचा। सिर-भुज-हीन रुंड महि नाचा।
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु सर हति कृत जुग खंडा।
गर्जेउ मरत घोररव भारी। कहाँ राम रन हतउं प्रचारी।
डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर।
धरनि परेउ दोउ खंड बढ़ाई। चापि भालु - मर्कट - समुदाई।

मंदोदरि आगे भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा।
प्रविसे सब निषंग महं जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई।
तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन।
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल-भुज-दंडा।
बरषहिं सुमन देव-मुनि-बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा।

छंद—जय कृपाकंद मुकुंद द्वंदहरन सरन-सुख-प्रद प्रभो।
खल-दल-बिदारन परमकारन कारुनीक सदा बिभो॥
सुर सुमन बर्षहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही।
संग्रामअंगन रामअंग अनंग बहु सोभा लही॥
सिर जटामुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगुन भ्राजहीं॥
भुजदंड सरकोदंड फेरत रुधिरकन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥

दो०—कृपा दृष्टि करि बृष्टि प्रभु, अभय किये सुरबृंद।
भालु कीस सब हरषे, जय सुखधाम मुकुंद॥ ८२॥

पतिसिर देखत मंदोदरी। मुरछित बिकल धरनि खसि परी।
जुबतिबृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाय रावन पहिं आईं।
पतिगति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष सँभारा।
उरताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना।
तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेजहीन पावक ससि तरनी।
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा।
बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रनसनमुख धर काहु न धीरा।
भुजबल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं।
जगतबिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई।
रामबिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा।
तव बस बिधिप्रपंच सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा।

अब तव सिरभुज जंबुक खाहीं। रामविमुख यह अनुचित नाहीं।
कालविवस पति कहा न माना। अग-जग-नाथु मनुज करि जाना।

दो०—अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिंधु नहिं आन।
मुनिदुर्लभ जो परमगति, तोहि दीन्हि भगवान ॥ ८३ ॥

रुदन करत विलोकि सब नारी। गयउ विभीषन मन दुख भारी।
बंधुदसा देखत दुख कीन्हा। राम अनुज कहँ आयसु दीन्हा।
लछिमन जाइ ताहि समुझायउ। बहुरि विभीषन प्रभु पहिं आयउ।
कृपादृष्टि प्रभु ताहि विलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका।
कीन्ह क्रिया प्रभुआयसु मानी। विधिवत देश काल जिय जानी।

दो०—मंदोदरी आदि सब, देइ तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन,-गन बरनत मन माहिं ॥ ८४ ॥

आइ विभीषन पुनि सिर नायउ। कृपासिंधु तब अनुज बोलायउ।
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला। जामवंत मारुति नयसीला।
सब मिलि जाहु विभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा।
पितावचन मैं नगर न आवउँ। आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ।
तुरत चले कपि सुनि प्रभुवचना। कीन्ही जाइ तिलक कै रचना।
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी।
जोरि पानि सबहीं सिर नाये। सहित विभीषन प्रभु पहिं आये।
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रियवचन सुखी सब कीन्हे।

छंद—किये सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारे रिपु हयो।
पायो विभीषन राजु तिहुं पुर जस तुम्हारो नित नयो।
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जे गाइहैं।
संसारसिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

दो०—प्रभु के बचन स्रवन सुनि, नहिं अघाहिं कपिपुंज।
बार बार सिर नावहीं, गहहिं सकल पदकंज ॥ ८५ ॥

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना।

समाचार जानकिहिं सुनावहु । तासु कुसल लेइ तुम्ह चलि आवहु ।
तब हनुमंत नगर महं आये । सुनि निसिचरी निसाचर धाये ।
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही । जनकसुता दिखाइ पुनि दीन्ही ।
दूरिहिं तें प्रनाम कपि कीन्हा । रघु-पति-दूत जानकी चीन्हा ।
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता । कुसल अनुज-कपि-सेन-समेता ।
सब बिधि कुसल कोसलाधीसा । मातु समर जीतेउ दससीसा ।
अबिचल राज बिभीषन पावा । सुनि कपिबचन हरष उर छावा ।

छंद—अतिहरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा ।
का देउँ तोहि त्रैलोक महं कपि किमपि नहिं बानी समा ।
सुनु मातु मैं पायउं अखिल-जग-राज आजु न संसयं ।
रन जीति रिपुदल बंधुगत पस्यामि राममनामयं ॥

दो०—सुनु सुत सदगुन सकल तब, हृदय बसहु हनुमंत ।
सानुकूल कोसलपति, रहहु समेत अनंत ॥ ८६ ॥

अबसोइ जतन करहु तुम्ह ताता । देखउ नयन स्याम मृदुगाता ।
तब हनुमान राम पहिं जाई । जनकसुता कै कुसल सुनाई ।
सुनि संदेस भानु-कुल भूषन । बोलि लिये जुवराज बिभीषन ।
मारुतसुत के संग सिधावहु । सादर जनकसुतहिं लेइ आवहु ।
तुरतहिं सकल गये जहँ सीता । सेवहिं सब निसिचरी बिनीता ।
बेगि बिभीषन तिन्हहिं सिखावा । सादर तिन्ह सीतहि अन्हवावा ।
बहु प्रकार भूषन पहिराये । सिबिका रुचिर साजि पुनि लाये ।
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही । सुमिरि राम सुखधाम सनेही ।
बेतपानि रच्छक चहुं पासा । चले सकल मन परम हुलासा ।
देखन भालु कीस सब आये । रच्छक कोपि निवारन धाये ।
कह रघुबीर कहा मम मानहु । सीतहिं सखा पयादे आनहु ।
देखहिं कपि जननी की नाईं । बिहँसि कहा रघुनाथ गुसाईं ।
सुनि प्रभुबचन भालु कपि हरषे । नभ तें सुरन्ह सुमन बहु बरषे ।

सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी।

दो०—तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानीं सब, लागीं करइ विषाद॥ ८७॥

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन-क्रम-बचन-पुनीता।
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी।
सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह-बिबेक-धरम-स्रुति सानी।
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न कोऊ।
देखि रामरुख लछिमन धाये। पावक प्रगटि काठ बहु लाये।
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष कछु भय नहिँ तेही।
जौँ मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहँ होहु श्रिखंड समाना।

छंद—श्रीखंड-सम-पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस-बंदित-चरन रति अतिनिर्मली।
प्रतिबिंब अरु लौकिककलंक प्रचंड पावक महँ जरे।
प्रभुचरित काहु न लखे सुर नभ सिद्ध मुनि देखहिं खरे।
धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य स्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो।
सो राम बामबिभाग राजति रुचिर अतिसोभा भली।
नव-नील-नीरज निकट मानहुँ कनक-पंकज की कली।

दो०—बरषहिँ सुमन हरषि सुर, बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किन्नर सुरबधू, नाचहिं चढ़ी बिमान॥ ८८॥
श्री-जानकी-समेत प्रभु, सोभा अमित अपार।
देखत हरषे भालु कपि, जय रघुपति सुखसार॥ ८६॥

तब रघु-पति-अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई।
तब प्रभु निकट बिभीषन आये। बिनती करि चरनन सिर नाये।
नाइ चरन सिर कह मृदुबानी। बिनय सुनहु प्रभु सारँगपानी।

सकुल सदल प्रभु रावन मारा । पावन जसु त्रिभुवन विस्तारा ।
दीन मलीन हीनमति जाती । मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती ।
अब जनगृह पुनीत प्रभु कीजै । मज्जन करिय समरस्रम छीजै ।
देखि कोस मंदिर संपदा । देहु कृपाल कपिन्ह कहं मुदा ।
सब बिधि नाथ मोहि अपनाइय । पुनि मोहि सहितअवधपुरजाइय ।
सुनत बचन मृदु दीनदयाला । सजल भये दोउ नयन बिसाला ।

दो०—तोर कोस गृह मोर सब, सत्य बचन सुनु भ्रात ।
दसा भरत सुमिरत मोहि, निमिष कल्पसम जात ॥ ६० ॥
तापस बेष गात कृस, जपत निरंतर मोहि ।
देखउ बेगि सो जतन करु, सखा निहारउं ताहि ॥ ६१ ॥
बीते अवधि जाउं जौं, जियत न पावउं बीर ।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर ॥ ६२ ॥
करेहु कल्पभरि राज तुम्ह, मोहि सुमिरेहु मन माहिं ।
पुनि मम धाम पाइहहु, जहाँ संत सब जाहिं ॥ ६३ ॥

सुनत बिभीषन बचन राम के । हरषि गहे पद कृपाधाम के ।
बानर भालु सकल हरषाने । गहि प्रभुपद गुन बिमल बखाने ।
बहुरि बिभीषन भवन सिधावा । मनि-गन-बसन बिमान भरावा ।
लेइ पुष्पक प्रभु आगे राखा । हँसि करि कृपासिंधु तब भाखा ।
चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन । गगन जाइ बरषहु पट भूषन ।
नभ पर जाइ बिभीषन तबहीं । बरषि दिये मनि अंबर सबहीं ।
जोइ जोइ मन-भावइ सोइ लेहीं । मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ।
हँसे राम श्री-अनुज-समेता । परमकौतुकी कृपानिकेता ।
भालु कपिन्ह पट भूषन पाये । पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आये ।
नाना जिनिस देखि प्रभु कीसा । पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा ।
चितइ सबन्ह पर कीन्ही दाया । बोले मृदुल बचन रघुराया ।
तुम्हरे बल मैं रावन मारा । तिलक बिभीषन कहं पुनि सारा ।

निज-निज-गृह अब तुम्ह सब जाहू । सुमिरेहु मोहि डरपेहु जनि काहू ।
बचन सुनत प्रेमाकुल बानर । जोरि पानि बोले सब सादर ।
प्रभु जोइ कहहु तुम्हहिं सब सोहा । हमरे होत बचन सुनि मोहा ।
दीन जानि कपि किये सनाथा । तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा ।
सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं । मसक कतहुं खगपति हित करहीं ।
देखि रामरुख बानर रीछा । प्रेममगन नहिं गृह कै ईछा ।

दो०—प्रभु प्रेरित कपि भालु सब, रामरूप उर राखि ।
हरष बिषाद सहित चले, बिनय बिबिध बिधि भाखि ॥९४॥

कपिपति नील रीछपति, अंगद नल हनुमान ।
सहित बिभीषन अपर जे, जूथप कपि बलवान ॥ ९५ ॥

कहि न सकहिं कछु प्रेमबस, भरि भरि लोचन बारि ।
सनमुख चितवहिं रामतन, नयननिमेष निवारि ॥ ९६ ॥

अतिसय प्रीति देखि रघुराई । लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई ।
मन महँ बिप्रचरन सिर नावा । उत्तर दिसिहि बिमान चलावा ।
चलत बिमान कोलाहल होई । जय रघुबीर कहहिं सब कोई ।
सिंहासनु अतिउच्च मनोहर । श्रीसमेत प्रभु बैठे ता पर ।
राजत रामसहित भामिनी । मेरुसृंग जनु घनु दामिनी ।
रुचिर बिमान चलेउ अतिआतुर । कीन्ही सुमनबृष्टि हरषे सुर ।
परम सुखद चलि त्रिबिधि बयारी । सागर सर सरि निर्मल बारी ।
सगुन होहिं सुंदर चहुं पासा । मन प्रसन्न निर्मल सुभ आसा ।
कह रघुबीर देखु रन सीता । लछिमन इहां हतेउ इंद्रजीता ।
हनूमान अंगद के मारे । रन महि परे निसाचर भारे ।
कुंभकरन रावन दोउ भाई । इहाँ हते सुर-मुनि-दुख-दाई ।

दो०—इहाँ सेतु जहँ बाँधेउं, अरु थापेउं सुखधाम ।
सीतासहित कृपानिधि, संभुहि कीन्ह प्रनाम ॥ ९७ ॥

जहँ जहँ करुनासिंधु वन, कीन्ह बास बिस्राम ।
सकल देखाये जानकिहि, कहे सबन्हि के नाम ॥ ९८ ॥

सपदि बिमान तहाँ चलि आवा । दंडकवन जहं परम सुहावा ।
कुंभजादि मुनिनायक नाना । गये राम सब के अस्थाना ।
सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा । चित्रकूट आयउ जगदीसा ।
तहं करि मुनिन्ह केर संतोखा । चला बिमान तहां ते चोखा ।
बहुरि राम जानकिहिं देखाई । जमुना कलि-मल-हरनि सुहाई ।
पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रनाम करु सीता ।
तीरथपति पुनि देखु प्रयागा । देखत जनम कोटि अघ भागा ।
देखु परम पावनि पुनि बेनी । हरनि सोक हरि-लोक-निसेनी ।
पुनि देखु अवधपुरीअतिपावनि । त्रिबिध ताप भवरोग नसावनि ।

दो०—सीतासहित अवध कहं, कीन्ह कृपाल प्रनाम ।
सजल नयन तन पुलकित, पुनि पुनि हरषत राम ॥ ९९ ॥

बहुरि त्रिबेनी आइ प्रभु, हरषित मज्जनु कीन्ह ।
कपिन्ह समेत बिप्रन कहं, दान बिबिध बिधि दीन्ह ॥१००॥

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई । धरि बटरूप अवधपुर जाई ।
भरतहिं कुसल हमारि सुनायहु । समाचार लेइ तुम्ह चलि आयउ ।
तुरत पवनसुत गवनत भयऊ । तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ ।
नाना बिधि मुनिपूजा कीन्ही । अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही ।
मुनिपद बंदि जुगल कर जोरी । चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी ।
इहाँ निषाद सुना हरि आये । नाव नाव कहं लोग बोलाये ।
सुरसरि नाँघि जान जब आवा । उतरेउ तट प्रभुआयसु पावा ।
तब सीता पूजी सुरसरी । बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी ।
दीन्हि असीस हरषि मन गंगा । सुंदरि तव अहिवात अभंगा ।
सुनत गुहा धायेउ प्रेमाकुल । आयउ निकट परम-सुख-संकुल ।
प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही । परेउ अवनि तन सुधि नहिँ तेही ।

प्रीति परम बिलोकि रघुराई । हरषि उठाइ लियो उर लाई ।

छंद—लियो हृदय लाइ कृपानिधान सुजान राय रमापती ।
बैठारि परमसमीप बूझी कुसल सोकर बीनती ।
अब कुसल पदपंकज बिलोकि बिरंचि-शंकर-सेव्य जे ।
सुखधाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते ॥

उत्तर कांड।

दो०—रहा एक दिन अवधि कर, अतिआरत पुरलोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर, कृसतन रामवियोग॥ १॥
सगुन होहिं सुंदर सकल, मन प्रसन्न सब केर।
प्रभुआगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर॥ २॥
कौसल्यादि मातु सब, मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु सिय-अनुज-युत, कहन चहत अब कोइ॥ ३॥
भरत-नयन-भुज दच्छिन, फरकत वारहिं वार।
जानि सगुन मन हरप अति, लागे करन विचार॥ ४॥

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा।
कारन कवन नाथ नहिं आये। जानि कुटिल किधौं मोहि विसराये।
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम - पदारविंदु - अनुरागी।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ता तें नाथ संग नहिं लीन्हा।
जौं करनी समुझहिं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलपसत कोरी।
जनअवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनवंधु अतिमृदुल सुभाऊ।
मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई।
वीते अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।

दो०—राम - विरह - सागर महँ, भरत मगन मन होत।
विप्ररूप धरि पवनसुत, आइ गउय जनु पोत॥ ५॥
वैठे देखि कुसासन, जटामुकुट कृसगात।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जलजात॥ ६॥

देखत हनूमान अति हरपेउ। पुलकगात लोचन जल वरपेउ।
मन महँ वहुतभाँति सुख मानी। वोलेउ स्रवन-सुधा - सम वानी।
जासु विरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन-गन-पाँती।

रघु-कुल-तिलक सु-जन-सुख-दाता। आयउ कुसल देव-मुनि-त्राता।
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित पुर आवत।
सुनत वचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाव पियूखा।
को तुम्ह तात कहाँ तें आये। मोहि परम प्रिय वचन सुनाये।
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपानिधाना।
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।
मिलत प्रेम नहिँ हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता।
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते।
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहँ देउँ काह सुनु भ्राता।
एहि संदेससरिस जग माहीँ। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीँ।
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभुचरित सुनावहु मोही।
तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघु-पति-गुन-गाथा।
कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं। सुमिरहिँ मोहि दास की नाईं।

छंद—निज दास ज्यौँ रघु-बंस-भूषन कबहुँ मम सुमिरन कस्यो।
सुनि भरत वचन विनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पस्यो।
रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अग - जग - नाथ जो।
काहे न होइ विनीत परम पुनीत सद - गुन - सिंधु सो॥

दो०—राम प्रान - प्रिय नाथ तुम्ह, सत्य वचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हरष न हृदय समात॥ ७॥

सो०—भरतचरन सिरनाइ, तुरित गयउ कपि राम पहिँ।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि॥ ८॥

हरषि भरत कोसलपुर आये। समाचार सब गुरुहिँ सुनाये।
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई।
सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु सकल भरत समुझाईं।
समाचार पुरबासिन्ह पाये। नर अरु नारि हरषि सब धाये।
दधि दुर्वा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगलमूला।

भरि भरि हेमथार भामिनी। गावत चलीं सिंधुरगामिनी।
जो जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल वृद्ध कहँ सँग न लावहिं।
एक एकन्ह कहँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई।
अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी।
भई सरजू अति-निर्मल-नीरा। बहइ सुहावन त्रिविध समीरा।

दो०—हरषित गुरु परिजन अनुज, भू-सुर-बृंद-समेत।
चले भरत अतिप्रेम मन, सनमुख कृपानिकेत॥ ९॥
बहुतक चढ़ी अटारिन्ह, निरखहिं गगन विमान।
देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान॥ १०॥
राकाससि रघुपति पुर, सिंधु देखि हरषान।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु, नारि-तरंग-समान॥ ११॥

इहाँ भानु-कुल-कमल-दिवा-कर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर।
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा।
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद-पुरान-विदित जग जाना।
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।
जनमभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि वह सरजू पावनि।
जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा। मम समीप पावहिं नर बासा।
अतिप्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी।
हरषे सब कपि सुनि प्रभुबानी। धन्य अवध जो राम बखानी।

दो०—आवत देखि लोग सब, कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि विमान॥ १२॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहिं, तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हरष बिरहु अति ताहु॥ १३॥

आये भरत संग सब लोगा। कृसतन श्री-रघु-बीर-बियोगा।
बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक।
धाइ धरे गुरु-चरन-सरोरुह। अनुजसहित अति-पुलक-तनोरुह।

भेँटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया।
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धरम-धुरंधर रघु-कुल-नाथा।
गहे भरत पुनि प्रभु-पद-पंक-ज। नमत जिन्हहिं सुर मुनि शंकर अज।
परे भूमि नहिं उठत उठाये। बर करि कृपासिंधु उर लाये।
स्यामलगात रोम भये ठाढ़े। नव-राजीव-नयन जल बाढ़े।

छंद—राजीवलोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अतिप्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रि-भुवन-धनी।
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले वर सुखमा लही।
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहिं वचन वेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख वचन मन तें भिन्न जान जो पावई।
अब कुसल कोसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त विरहवारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो।

दो०—पुनि प्रभु हरषित सत्रुहन, भेँटे हृदय लगाइ।
लछिमनु भरत मिले तब, परम प्रेम दोउ भाइ॥ १४॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेँटे। दुसह विरहसंभव दुख मेटे।
सीताचरन भरत सिरु नावा। अनुजसमेत परम सुख पावा।
प्रभु बिलोकि हरषे पुरवासी। जनित वियोग विपति सब नासी।
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी।
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहिं कृपाला।
कृपादृष्टि रघुवीर विलोकी। किये सकल नर नारि विसोकी।
छन महँ सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना।
एहि विधि सबहिं सुखी करि रामा। आगे चले सील-गुन-धामा।
कौसल्यादि मातु सब धाईँ। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं।

छंद—जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गईं।
दिनअंत पुरु रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं।

अतिप्रेम प्रभु सब मातु भेँटी बचन मृदु बहु बिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगिनित कहे॥

दो०—भेँटेउ तनय सुमित्रा, राम-चरन-रति जानि।
रामहिँ मिलत कैकई, हृदय बहुत सकुचानि॥ १५॥

लछिमन सब मातन्ह मिलि, हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले, मन कर छोभ न जाय॥ १६॥

सासुन्ह सबन्ह मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही।
देहिँ असीस बूझि कुसलाता। होहु अचल तुम्हार अहिवाता।
सब रघु-पति-मुख-कमल बिलोकहिँ। मंगल जानि नयनजल रोकहिँ।
कनकथार आरती उतारहिँ। बार बार प्रभुगात निहारहिँ।
नाना भाँति निछावरि करहीँ। परमानंद हरष उर भरहीँ।
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहिँ। चितवति कृपासिंधु रनधीरहिँ।
हृदय बिचारति बारहिँ बारा। कवन भाँति लंकापति मारा।
अतिसुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे।

दो०—लछिमन अरु सीतासहित, प्रभुहिँ बिलोकति मात।
परमानंद-मगन-मन, पुनि पुनि पुलकित गात॥ १७॥

लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला।
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुजसरीरा।
भरत-सनेह - सील - ब्रत - नेमा। सादर सब बरनहिँ अति प्रेमा।
देखि नगरबासिन्हि कै रीती। सकल सराहहिँ प्रभु-पद-प्रीती।
पुनि रघुपति सब सखा बोलाये। मुनिपद लागहु सकल सिखाये।
गुरु बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे।
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समरसागर कहँ बेरे।
मम हित लागि जनम इन्ह हारे। भरतहुँ तेँ मोहि अधिक पियारे।
सुनि प्रभुबचन मगन सब भये। निमिष निमिष उपजत सुख नये।

दो०—कोसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नायेउ माथ।
आसिष दीन्हीं हरषि तुम्ह, प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥ १८॥
सुमनवृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं, नगर नारि-वर-वृंद॥ १९॥

कंचनकलस विचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे।
वंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाये मंगलहेतू।
बीथी सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई।
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे।
जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं।
कंचनथार आरती नाना। जुवती सजे करहिं शुभ गाना।
करहिं आरती आरतिहर कै। रघु-कुल-कमल-विपिन-दिन-कर कै।
पुरसोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना।
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं।

दो०—नारि कुमुदिनी अवध सर, रघु-पति-विरह दिनेस।
अस्त भये बिगसत भईं, निरखि राम राकेस॥ २०॥
होहिं सगुन शुभ विविध विधि, बाजहिं गगन निसान।
पुर-नर-नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान॥ २१॥

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गये भवानी।
ताहि प्रबोध बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा।
कृपासिंधु जब मंदिर गये। पुर-नर-नारि सुखी सब भये।
गुरु वसिष्ठ द्विज लिये बोलाई। आज सुघरी सुदिन सुभदाई।
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंहासन।
मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाये। सुनत सकल विप्रन्ह अति भाये।
कहहिं बचन मृदु विप्र अनेका। जगअभिराम रामअभिषेका।
अब मुनिवर बिलंबु नहि कीजै। महाराज कहुं तिलक करीजै।

दो०—तब मुनि कहेउ सुमंत सन, सुनत चलेउ हरषाइ ।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारेउ जाइ ॥ २२ ॥
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि, मंगल द्रव्य मंगाइ ।
हरष समेत वसिष्ठ पद, पुनि सिरु नायेउ आइ ॥ २३ ॥

अवधपुरी अति रुचिर बनाई । देवन्ह सुमनवृष्टि झरि लाई ।
राम कहा सेवकन्ह बोलाई । प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई ।
सुनत वचन जहँ तहँ जन धाये । सुग्रीवादि तुरत अन्हवाये ।
पुनि करुनानिधि भरत हँकारे । निज कर राम जटा निरुवारे ।
अन्हवाये प्रभु तीनिउँ भाई । भगतबछल कृपाल रघुराई ।
भरतभाग्य प्रभु-कोमलताई । सेष कोटि सत सकहिं न गाई ।
पुनि निज जटा राम विवराये । गुरु अनुसासन माँगि नहाये ।
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे । अँग अनंग कोटि छवि लाजे ।

दो०—सासुन्ह सादर जानकिहिं, मज्जन तुरत कराइ ।
दिव्य वसन वर भूषन, अँग अँग सजे बनाइ ॥ २४ ॥
राम-वाम-दिसि सोभित, रमारूप गुनखानि ।
देखि मातु सब हरषीं, जनम सुफल निज जानि ॥ २५ ॥
सुनु खगेस तेहि अवसर, ब्रह्मा सिव मुनिवृंदि ।
चढ़ि बिमान आये सब, सुर देखन सुखकंद ॥ २६ ॥

प्रभु बिलोकि मुनियन अनुरागा । तुरत दिव्य सिंहासन माँगा ।
रविसम तेज सो बरनि न जाई । बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ।
जनक-सुता-समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनिसमुदाई ।
वेदमंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ।
प्रथम तिलक वसिष्ठ मुनि कीन्हा । पुनि सब विप्रन्ह आयसु दीन्हा ।
सुत बिलोकि हरषीं महतारी । बार बार आरती उतारी ।
विप्रन्ह दान विविध विधि दीन्हे । जाचक सकल अजाचक कीन्हे ।
सिंहासन पर त्रिभुवन-साईं । देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाईं ।

छंद—नभ दुंदुभी बाजहिँ विपुल गंधर्व किन्नर गावहीँ।
नाचहिँ अपछरावृंद परमानंद सुर मुनि पावहीँ।
भरतादि अनुज विभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर व्यंजन धनु असि चर्म सक्ति विराजते॥
श्रीसहित दिन-कर-बंस-भूषन काम बहु छवि सोहई।
नव-अंबु-धर-बर-गात अंबर पीत मुनिमन मोहई।
मुकुटांगदादि विचित्र भूषन अंग अंगिन्ह प्रति सजे।
अंभोजनयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंत जे॥

दो०—वह सोभा सुसमाज सुख, कहत न बनइ खगेस।
बरनइ सारद सेष स्रुति, सो रस जान महेस॥ २७॥
वैनतेय सुनु संभु तव, आये जहँ रघुबीर।
विनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक सरीर॥ २८॥

जय राम रमा रमनं समनं। भव-ताप-भयाकुल पाहि जनं॥
अवधेस सुरेस रमेस विभो। सरनागत माँगत पाहि प्रभो॥
दस-सीस-विनासन बीस भुजा। कृत दूरि महा-महि-भूरि-रुजा॥
रजनी-चर-बृंद-पतंग रहे। सर-पावक-तेज प्रचंड दहे॥
महि-मंडल-मंडन चारुतरं। धृत-सायक-चाप-निषंग-बरं॥
मद मोह महा ममता रजनी। तमपुंज दिवाकर-तेज-अनी॥
मनजात किरात निपात किये। मृग लोग कुभोग सरेन हिये॥
हति नाथ अनाथन्हि पाहि हरे। विषयावन पाँवर भूलि परे॥
बहु रोग वियोगन्हि लोग हये। भवदंघ्रिनिरादर के फल ये॥
भवसिंधु अगाध परे नर ते। पद-पंकज-प्रेम न जे करते॥
अतिदीन मलीन दुखी नितही। जिन्ह के पदपंकज प्रीति नहीँ॥
अवलंब भवंत कथा जिन्ह के। प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह के॥
नहिँ राग न लोभ न मान मदा। तिन्ह के सम वैभव वा विपदा॥
एहि ते तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥

करि प्रेम निरंतर नेम लिये। पदपंकज सेवित सुद्ध हिये॥
सम मानि निरादर आदरहीं। सब, संत सुखी बिचरंति मही॥
मुनि-मानस-पंकज-भृंग भजे। रघुवीर महा-रन-धीर अजे॥
तव नाम जपामि नमामि हरी। भवरोग महा मद मान अरी॥
गुनसील कृपापरमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं॥
रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं। महिपाल बिलोकय दीनजनं॥

दो०—बार बारबर माँगउँ, हरषि देहु श्रीरंग।
पद-सरोज अनपायनी, भगति सदा सतसंग॥ २९॥
बरनि उमापति रामगुन, हरषि गये कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाये, सब बिधि सुखप्रद बास॥ ३०॥
ब्रह्मानंदमगन कपि, सब के प्रभुपद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गये मास षट बीति॥ ३१॥

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि परद्रोह संत मन माहीं।
तब रघुपति सब सखा बोलाये। आइ सबन्हि सादर सिर नाये।
परमप्रीति समीप बैठारे। भगतसुखद मृदु बचन उचारे।
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करउँ बड़ाई।
ता तें मोहि तुम्ह अतिप्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे।
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही।
सब मम प्रिय नहिँ तुम्हहिँ समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना।
सब के प्रिय सेवक ये नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती।

दो०—अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित, जानि करेहु अतिप्रेम॥ ३२॥

सुनि प्रभु बचन मगन सब भये। को हम कहाँ बिसरि तन गये।
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिँ न कछु कहि अतिअनुरागे।
परमप्रेम तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ज्ञान बिसेखा।
प्रभु सनमुख कछु कहइ न पारहिं। पुनि पुनि चरनसरोज निहारहिँ।

तब प्रभु भूषन बसन मँगाये। नाना रंग अनूप सुहाये।
सुग्रीवहिँ प्रथमहिँ पहिराये। बसन भरत निज हाथ बनाये।
प्रभुप्रेरित लछिमन पहिराये। लंकापति रघुपति मन भाये।
अंगद बैठि रहा नहिँ डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला।

दो०—जामवंत नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ।
हिय धरि रामरूप सब, चले नाइ पद माथ॥ ३३॥
तब अंगद उठि नाइ सिरु, सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोलेउ बचन, मनहुँ प्रेमरस बोरि॥ ३४॥

सुनु सर्वज्ञ कृपा - सुख - सिंधो। दीन - दया - कर आरतबंधो।
मरती बार नाथ मोहि बाली। गयेउ तुम्हारेहिँ कोछे घाली।
अ - सरन - सरन बिरद संभारी। मोहि जनि तजहु भगत-हितकारी।
मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद-जल-जाता।
तुम्हइँ बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काजु मम काहा।
बालक ज्ञान - बुद्धि - बल - हीना। राखहु सरन जानि जन दीना।
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद-पंक-ज बिलोकि भव तरिहउँ।
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही।

दो०—अंगदबचन बिनीत सुनि, रघुपति करुनासींव।
प्रभु उठाइ उर लायेउ, सजल नयनराजीव॥ ३५॥
निज उरमाल बसन मनि, बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ॥ ३६॥

भरत - अनुज - सौमित्रि-समेता। पठवन चले भगत कृतचेता।
अंगदहृदय प्रेम नहिँ थोरा। फिरि फिर चितव राम की ओरा।
बार बार कर दंडप्रनामा। मन अस रहन कहिहिँ मोहि रामा।
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी।
प्रभुरुख देखि बिनय बहु भाखी। चलेउ हृदय पद-पंक-ज राखी।
अति आदर सब कपि पहुँचाये। भाइन्ह सहित भरत पुनि आये।

तब सुग्रीवँ चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्ही हनुमाना।
दिन दस करि रघुपति-पद-सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा।
पुन्यपुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपाआगारा।
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता।

दो०—कहेहु दंडवत प्रभु सन, तुम्हहिँ कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहिँ, सुरति करायेहु मोरि ॥ ३७ ॥
अस कहि चलेउ बालिसुत, फिरि आयेउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही, मगन भये भगवंत ॥ ३८ ॥
कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस अस राम कर, समुझि परइ कहु काहि ॥ ३९ ॥

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू।
तुम्ह मम सखा भरतसम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी।
चरननलिन उर धरि गृह आवा। प्रभुसुभाउ परिजनन्हि सुनावा।
रघुपतिचरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिँ धन्य सुखरासी।
राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका।
बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप बिषमता खोई।

दो०—बरनास्रम निज निज धरम, निरत बेदपथ लोग।
चलहिँ सदा पावहिँ सुख, नहिँ भय सोक न रोग ॥ ४० ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिँ काहुहि ब्यापा।
सब नर करहिँ परसपर प्रीती। चलहिँ स्वधर्म निरत स्रुतिरीती।
चारिहु चरन धरम जग माहीँ। पूरि रहा सपनेहु अघ नाहीँ।
राम-भगति-रत सब नर नारी। सकल परम गति के अधिकारी।
अल्प मृत्यु नहिँ कवनिउँ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।
नहिँ दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिँ कोउ अबुध न लच्छनहीना।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिँ कपट सयानी।

दो०—रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिँ।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिँ॥ ४१॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।
भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू।
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी।
सो महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहि चरित तिन्हहुँ रति मानी।
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिँ महा मुनिवर दमसीला।
रामराज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा।
सब उदार सब परउपकारी। बिप्र-चरन-सेवक नरनारी।
एक-नारि-व्रत-रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति-हित-कारी।

दो—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्त्तक नृत्यसमाज।
जितहु मनहिँ अस सुनिय जग, रामचंद्र के राज॥ ४२॥

फूलहिँ फरहिँ सदा तरु कानन। रहहिँ एक सँग गज पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परसपर प्रीति बढ़ाई।
कूजहिँ खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिँ बन करहिँ अनंदा।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लेइ चलि मकरंदा।
लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीँ।
ससिसंपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी।
प्रगटी गिरिन्ह बिबिध मनिखानी। जगदातमा भूप जग जानी।
सरिता सकल बहहिँ बर बारी। सीतल अमल स्वादु सुखकारी।
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं।
सरसि-ज-संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस-दिसा-बिभागा।

दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहिँ काज।
माँगे बारिद देहिँ जल, रामचंद्र के राज॥ ४३॥

रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक - सुख - संपदा, रहीं अवध सब छाइ॥ ४४॥

जहँ तहँ नर रघु-पति-गुन गावहिँ। वैठि परसपर इहइ सिखावहिँ।
भजहु प्रनत-प्रति-पालक रामहिँ। सोभा-सील-रूप-गुन- धामहिँ।
जल-ज-विलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवकत्रातहि।
धृत - सर रुचिर-चाँप-तूनीरहिँ। संत-कंज - वन रवि-रन-धीरहिँ।
काल कराल व्याल खग राजहिँ। नमत राम अकाम ममता जहिँ।
लोभ-मोह-मृग-जूथ-किरातहिँ। मनसि-ज-करि-हरिजन-सुख-दातहिँ।
संसय-सोक-निविड़-तम-भानुहिँ। दनुज-गहन-घन-दहन-कृसानुहिँ।
जनक सुता - समेत रघुवीरहिँ। कस न भजहु भंजन भवभीरहिँ।
बहु-वासना-मसक-हिम-रासिहिँ। सदा एकरस अज अविनासिहिँ।
मुनिरंजन भंजन महिभारहिँ। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहिँ।

दो०—एहि विधि नगर-नारि-नर, कहहिँ राम-गुन-गान।
सानुकूल सब पर रहहिँ, संतत कृपानिधान॥ ४५॥

राम कथा गिरजा मैं बरनी। कलि-मल हरनि मनो-मल-हरनी।
संसृतिरोग सजीवन मूरी। रामकथा गावहिँ स्रुति भूरी।
अति हरिकृपा जासु पर होई। पाउँ देहि एहि मारग सोई।
मन - कामना - सिद्धि नर पावा। जो यह कथा कपट तजि गावा।
कहहिँ सुनहिँ अनुमोदन करहीँ। ते भवनिधि गोपद इव तरहीँ।
सुनि सुभ कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई।

दो०—मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद विस्वेस।
रामभगति दृढ़ उपजो, बीते सकल कलेस॥ ४६॥

यह सुभ संभु-उमा-संवादा। सुखसंपादन समन विषादा।
भवभंजन गंजन संदेहा। जनरंजन सज्जनप्रिय एहा।
रामउपासक जे जग माहीँ। एहि सम प्रिम तिन के कछु नाहीँ।
रघु-पति-कृपा जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जज्ञ जप तप व्रत पूजा।
रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिँ। संतत सुनिय राम-गुन-ग्रामहिँ।
जासु पतितपावन बड़ बाना। गावहिँ कवि स्रुति संत पुराना।
ताहि भजहिँ मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति के नहिँ पाई।

छंद—पाई न केहि गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिलि व्याध गीध गजादि खल तारे घना।
आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम वारक तेऽपि पावन होहिँ राम नमामि ते।
रघु-वंस-भूषन-चरित यह नर कहहिँ सुनहिँ जे गावहीँ।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम रामधाम सिधावहीँ।
सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरहिँ।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्री-रघु-वर हरहिँ।
सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अ-काम-हित निर्वानप्रद सम आन को।
जा को कृपा-लव-लेस तेँ मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायउ परमबिस्राम रामसमान प्रभु नाहीँ कहूँ।

दो०—मो सम दीन न दीनहित, तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघु-बंस-मनि, हरहु विषम-भव भीर॥ ४७॥
कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुबंस निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥ ४८॥